पाठ्यक्रम–1

1. मैथिलीशरण गुप्त.....5–12

2. जयशंकर प्रसाद.....13–20

3. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 21–26

4. अज्ञेय'.....27–33

5. रामधारी सिंह 'दिनकर.....34–42

6. कालजयी–भवानी प्रसाद मिश्र.....43–49

7. रस.....50–72

8. रीति 73–81

9. ध्वनि 82–90

10. वक्रोक्ति सम्प्रदाय.....91–97

11. छन्द 98–120

खंड 1
मैथिलीशरण गुप्त

पाठ का प्रारूप

1.1 प्रस्तावना
1.2 जीवन परिचय
1.3 साहित्यिक अवदान
1.4 मातृभूमि के प्रति प्रेम
1.5 प्रजातन्त्र में आस्था
1.6 समाज सुधार की भावना
1.7 गाँधीवाद का प्रचार
1.8 विश्वबन्धुत्व की भावना
1.9 कृतियाँ
1.10 काव्यगत विशेषताएँ
1.11 भावपक्षीय विशेषताएँ
1.12 कलापक्षीय विशेषताएँ
- ❑ अतिलघुउत्तरीय प्रश्न
- ❑ लघुउत्तरीय प्रश्न
- ❑ दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी 'काव्य सरोवर' के 'कमनीय कमल' हैं। किसी विनम्र, विनयशील, सात्विक तथा स्वाभिमान की भावना से परिपूर्ण गांधीवादी व्यक्तित्व के दर्शन करने हों तो हमें मैथिलीशरण गुप्त को जानना होगा। गुप्त जी जनभावना के प्रतीक हैं। जन–जन के प्रति मुखरित उनकी यह भावना मानवता के तत्वों से युक्त तथा सात्विकता से ओत–प्रोत हैं। गुप्त जी के साहित्य में कहीं भी वासना के दर्शन नहीं होते। इनका साहित्य मानवीय संवेदना एवं करूणा से परिपूर्ण है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति के अमर गायक, उद्‌भट प्रस्तोता और सामाजिक चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। भारतीय साहित्य अनेक उदात्त भावनाओं का संग्रह है। इन उदात्त भावनाओं के अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना का सर्वोपरि महत्व है। राष्ट्र के विकास और हित के लिए जो–जो क्रियाएँ, आस्थाएँ तथा धारणाएँ आवश्यक होती हैं उन सबके सामूहिक नाम को राष्ट्रीयता कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वान ऐडनबर्ग के अगुप्त जी ने अपने काव्य में विविध रसों की छटा बिखेरी है। उर्मिला प्रिय के वियोग में आरती के समान जलती रहती

है–"राष्ट्रीयता एक इच्छा है, जो बहुत से लोगों को किसी

एक राजनीतिक संगठन में रहने को बाध्य करती है।"

गुप्त जी राष्ट्रकवि थे। उन्होंने तत्कालीन भारतीय दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट किया। वे युग–चेतना और उसके विकसित होते हुए स्वरूप के प्रति सजग थे। सुप्त भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने वाले कवियों में गुप्त जी का सर्वोच्च स्थान है। इसीलिए उन्हें राष्ट्रकवि होने का महान गौरव प्राप्त है। राष्ट्रकवि गुप्त जी ने अपनी अनोखी प्रतिभा से हिन्दी काव्य दीप को नवीन आलोक और नवीन रूप प्रदान किया। उनका काव्य आधुनिक भारत का सच्चा दर्पण है।

1.2 जीवन परिचय

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् 1886 में झांसी जनपद के चिरगाँव नामक स्थान पर एक वैश्य कुल में हुआ था। इनके पिता श्री रामचरण गुप्त भगवद् भक्त और हिन्दी साहित्य से विशेष प्रेम था। वे स्वयं भी कविता किया करते थे। गुप्त जी की शिक्षा–दीक्षा घर पर ही हुई। उनके घर का वातावरण साहित्यिक था। इसीलिए गुप्त जी के मन में कविता के प्रति रूचि जागृत हुई। बचपन में गुप्त जी ने अपने पिताजी की कॉपी पर एक स्वरचित छप्पय लिख दिया, जिसे पढ़कर उनके पिताजी ने उन्हें आर्शीवाद दिया–"तुम सफल सिद्ध कवि हो"। पिताजी का यह आर्शीवाद राष्ट्रकवि के लिए भविष्य में सत्य ही सिद्ध हुआ। गुप्त जी के छोटे भाई सियारामशरण गुप्त भी हिन्दी के अच्छे कवि रहे हैं।

इसी बीच हिन्दी साहित्य के प्रखर स्तम्भ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने से इनकी प्रतिभा चमक उठी और इनके काव्य जीवन को नयी प्रेरणा मिली। ये आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपना गुरू मानते थे। द्विवेदी जी की प्रेरणा से गुप्त जी ने सर्वप्रथम खड़ी बोली में 'भारत–भारती' नामक कृति की रचना की। गुप्त जी का स्वभाव, वेशभूषा और रहन–सहन सादा और सरल था। उनके ऊपर गांधी जी के विचारों की छाप थी। उनकी निरंतर काव्य साधना और राष्ट्रीयता ने उनको इतना ऊँचा उठा दिया था कि आगरा और प्रयाग विश्वविद्यालयों ने उन्हें डी०लिट० की मानद् उपाधि से विभूषित किया। उनके साकेत नामक महाकाव्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मंगला प्रसाद पारितोषक' प्रदान किया। गुप्त जी को दो बार राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया। गुप्त जी मानवीय और राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत थे। असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण इन्हें कई बार जेल भेजा गया। सन् 1909 में इनकी पुस्तक 'रंग में भंग' तथा सन् 1912 ई० में 'भारत–भारती' का प्रकाशन हुआ। भारत सरकार ने सन् 1945 ई० में इनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया। 12 दिसम्बर सन् 1964 ई० में माँ भारती के इस अनन्य साधक ने अपनी इहलीला संवरण कर ली।

1.3 साहित्यिक अवदान

मैथिलीशरण गुप्त में बाल्यावस्था से ही काव्यात्मक प्रवृत्ति विद्यमान थी। ये बचपन से ही छुटपुट रचनाएँ करते थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आने के पश्चात् उनकी प्रेरणा से काव्य–रचना करके इन्होंने हिन्दी साहित्य की धारा को समृद्ध किया। इनकी कविता में राष्ट्रभक्ति एवसं राष्ट्रप्रेम का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ है। इस कारण हिन्दी साहित्य के तत्कालीन विद्वानों ने इन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया।

गुप्त जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियों में से एक समझे जाते हैं। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। इन रचनाओं में इतिवृत्तात्मक कथन एवं कठोरता है। इसमें एक प्रकार से कहानियाँ कही गयी हैं और भावात्मक सरसता का आभाव है।

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक युग की खड़ी बोली के निर्माता और उन्नायक कवियों में से हैं। गुप्त जी द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। गुप्त जी में चिन्तन एवं मौलिक दोनों प्रकार की अनुपम प्रतिभा थी। गुप्त जी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से हिन्दी जगत को विपुल मात्रा में साहित्य प्रदान किया। हिन्दी साहित्य का प्रत्येक पाठक इस सरल सीधे एवं प्रतिभाशाली कवि से परिचित है। उनके काव्य में सम्पूर्ण भारत की आत्मा मुखरित हो उठी है। तभी तो उनहें भारत का सच्चा राष्ट्रकवि माना जाता है। उनकी काव्यधारा ऐसी पवित्र गंगा है, जिसमें अवगाहन कर आत्मा पवित्र और उन्मुक्त हो जाती है।

1.4 मातृभूमि के प्रति प्रेम

गुप्त जी ने मातृभूमि की वन्दना करते हुए उसके स्वरूप का भी चित्रण किया है–

"नीलाम्बर परिधान हरित तट पर सुन्दर है।
सूर्यचन्द्र युगमुकुट, मेखला रत्नाकार है।।
नदियाँ प्रेम–प्रवाह फूल तौरण मण्डन है।
बन्दीजन खग वृन्द, शेष फन सिंहासन है।।
करते अंभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।"

1.5 प्रजातन्त्र में आस्था

गुप्त जी प्रजातन्त्र के महान पोषक थे। देश के कण–कण से उन्हें अनुराग था। आज शासन की बागडोर प्रजा के हाथ में है, अतः राजा तो प्रजा का सेवक मात्र है यदि वह न्यायपूर्वक शासन नहीं करता है तो प्रजा उसे हटाकर दूसरा राजा बना सकती है।

"राजा प्रजा का पात्र है, वह एक प्रतिनिधि मात्र है।
यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है।
हम दूसरा राजा चुनें, जो सब तरह सबकी सुने।
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है।"

1.6 समाज सुधार की भावना

कवि ने काव्य की रचना समाज सापेक्ष रूप से की है। भारत–भारती में गुप्त जी ने हिन्दू–समाज, नारी, साधु–सन्त, मन्दिर, महन्त आदि की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। गुप्त जी ने भारतवासियों के मध्य व्याप्त जाति–भेद, छुआछूत तथा भेदभाव पर आधारित भावना को त्याज्य बताकर मानवता का उपदेश दिया–

"एक अतुल हम सबका मूल, हमको भिन्न समझना भूल।
सम्प्रदाय रूचि के अनुकूल, हैं श्रृद्धा के ही संस्थान।"

नोटस

1.7 गाँधीवाद का प्रचार

गुप्त जी सत्य अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने समस्त विश्व की कल्याण की कामना की है। उनके द्वारा 'खादी का प्रचार' इन शब्दों में व्यक्त हुआ है–

"आओ हम कातें बुनें, ज्ञान की लय में।"

1.8 विश्वबन्धुत्व की भावना

गुप्त जी ने अपने साहित्य सृजन के लिए किसी न किसी प्राचीन आख्यान को आधार बनाया है। और उनके द्वारा भारतवासियों को कर्तव्य परायणता का उपदेश दिया है। कवि का मत है कि न्याय के लिए दण्ड देना अनिवार्य है, चाहे वह अपना इष्ट व्यक्ति क्यों न हो–

"अधिकार खोकर बैठे रहना, यह महादुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।"

गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति को विविध प्रकार से पोषक बनाया, चेतनामय बनाया तथा अपने काव्य में युगीन समस्याओं को प्रस्तुत करके उनका समाधान भी प्रस्तुत किया। प्राचीन संस्कृति एवं राष्ट्र भाव की अपने काव्य में प्रस्तुति कर इन्होंने युगधर्म का निर्वाह किया और अतीत के आदर्श को वर्तमान की प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया। ये द्विवेदी युग के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि माने जाते हैं।

1.9 कृतियाँ

गुप्त जी की चालीस मौलिक तथा छः अनुदित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनकी प्रसिद्ध मौलिक काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है–

भारत भारती

इस काव्यकृति में गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता का गुणगान किया है। इस काव्यरचना के कारण इन्हें राष्ट्रकवि होने का गौरव प्राप्त हआ।

साकेत

यह गुप्त जी का महाकाव्य है। इसमें उपेक्षित उर्मिला की करूणा कथा को प्रस्तुत किया गया है।

यशोधरा

इसकी रचना उपेक्षित यशोधरा के चरित्र को आधार बनाकर की गयी है।

पंचवटी

इस लघु खण्डकाव्य में गुप्त जी ने सुन्दर प्रकृति की पृष्ठभूमि के साथ लक्ष्मण के चरित्र को उजागर किया है।

द्वापर

इस कृति में कवि ने द्वापर युद्ध के साथ आधुनिक समस्याओं को चित्रित किया है। इसमेंनारी समस्याओं को विशेष रूप से उभारा गया है।

इसके अतिरिक्त गुप्त जी की अन्य काव्य रचनाएँ हैं–

'जयद्रथ

वध', 'जय–भारत', 'अनघ', 'सिद्धराज', 'झंकार', 'कुणाल–गीत', 'नहुष', 'पृथ्वीपुत्र', 'रंग में भंग', 'विष्णुप्रिया', 'मंगल घट', 'प्रदक्षिणा', 'गुरूकुल' आदि।

इनकी अनूदित रचनाएँ हैं– 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ वध', 'वृत्त संहार' आदि।

1.10 काव्यगत विशेषताएँ

गुप्त जी भावुक हृदय कवि थे। उन्होंने समाज की विविधता को आधार बनाया। कवि ने मनुष्य के समग्र जीवन का चित्रण किया है और उसे भारतीय संस्कृति के अनुसार ही व्यक्त किया हैं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन है– "गुप्त जी ने रामभक्ति के साथ–साथ मानव प्रेम, मानव सेवा, विश्व बन्धुत्व आदि पावन भावनाओं का अपने काव्य में समावेश किया। एक ओर ये भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में संलग्न थे तो दूसरी ओर नवीनता और प्रगति के भी पोषक। उन्होंने भारतीय संस्कृति के स्वरूप को ग्रहण किया, जो गतिशील है।"

गुप्त जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियों में हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में इतिवृन्त का सखापन है। पद्य में कही गयी इन कहानियों में भावात्मक सरसता का अभाव है। 'भारत–भारती' आदि प्रारम्भिक रचनाएँ ऐसी ही हैं। छायावाद के आगमन के साथ गुप्त जी की कविता में भी लाक्षणिकता वैचित्र्य और मनोभावों की सूक्ष्मता की मार्मिकता आयी। गुप्त जी का झुकाव भी गीतिकाव्य का समावेश करके गुप्त जी ने भाव–सौन्दर्य के मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण 'यशोधरा' और 'साकेत' जैसी उत्कृष्ट काव्य कृतियों का सृजन किया। गुप्त जी के काव्य की यह प्रधान विशेषता है कि गीति–काव्य के तत्वों को अपनाने के कारण उसमें सरसता आयी है, पर प्रबंध की धारा की अपेक्षा नहीं हुई।

राष्ट्र प्रेम गुप्त जी की कविता का प्रमुख स्वर है। 'भारत–भारती' में प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रेरणा चित्रण हुआ है। इस रचना में व्यक्त स्वदेश प्रेम ही उनकी परवर्ती रचनाओं में राष्ट्र प्रेम और नवीन राष्ट्रीय भावनाओं में परिणत हो गया। उनका विश्वास है–

"जो भरा नहीं है भावो से बहती जिसमें रसधार नहीं है।"

वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं उनकी कविता में आज की समस्या और विचारों के स्पष्ट दर्शन होते हैं। गाँधीवाद तथा कहीं–कहीं आर्यसमाज का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। अपने काव्यों की कथावस्तु गुप्त जी ने आज के जीवन से न लेकर प्राचीन इतिहास अथवा पुराणों से ली हैं। वे अतीत की गौरव गाथाओं को वर्तमान जीवन के लिए 'मानवतावादी' एवं नैतिक प्रेरणा देने के उद्देश्य से ही अपनाते थे। गुप्त जी की चिरत्र कल्पना में कहीं भी अलौकिकता के लिए स्थान नहीं है। उनके समस्त चरित्र मानव

हैं, उसमें देव और दानव नहीं हैं। उनके राम, कृष्ण, गौतम आदि सभी प्राचीन और चिरकाल से हमारी श्रद्धा प्राप्त किए हुए पात्र हैं। इसलिए वे जीवन प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करते हैं। 'साकेत' के राम 'ईश्वर' होते हुए भी तुलसी की भाँति आराध्य नहीं, हमारे ही बीच के एक व्यक्ति हैं।

नारी के प्रति गुप्त जी का हृदय सहानुभूति और करूणा से आप्लावित है। 'यशोधरा', 'उर्मिला', 'कैकेयी', 'विधृता', 'रानकदे' आदि नारियाँ गुप्त जी की महत्वपूर्ण सृष्टि हैं।

गुप्त जी की भाव–व्यंजना में सर्वत्र ही जीवन की गंभीर अनुभूति के दर्शन होते हैं। उन्होंने कल्पना का आश्रय तो लिया है, परन्तु उनके भाव कहीं भी मानव की स्वाभाविकता का अतिक्रमण नहीं भी मानव की स्वाभाविकता का अतिक्रमण नहीं करते। गुप्त जी राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने प्रकृति–चित्रण की लगभग सभी शैलियाँ अपनायी हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य में विविध रसों की छटा बिखेरी हैं। परन्तु श्रृंगार, वीर, शान्त और करूण रस का विशेष परिपाक हुआ है। उनके काव्य में निम्नांकित प्रमुख विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं–

1.11 भावपक्षीय विशेषताएँ

दिनकर जी ने कविता को छायावाद के सम्मोहन से मुक्त किया तथा उसमें राष्ट्रवादी और प्रगतिशील विचारों को स्थान दिया। दिनकर जी के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

रस योजना

गुप्त जी ने अपने काव्य में विविध रसों की छटा बिखेरी है। 'यशोधरा', 'शकुन्तला' आदि उनकी श्रृंगार पर आधारित उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। 'साकेत' में श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। उर्मिला प्रिय के वियोग में आरती के समान जलती रहती है–

"मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप।।"

इसी प्रकार 'भारत–भारती' तथा 'सिद्धराज' में वीर–रस का वर्णन मिलता है। अभिमन्यु के वध का समाचार सुनकर अर्जुन क्रोध के वशीभूत हो जाते हैं–

"श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
संसार देखे सब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े,
करते हुए ये घोषणा वे हो गए उठकर खड़े।।"

मार्मिक स्थलों की परख एवं कोमल प्रसंगों की उद्‌भावना

कवि ने कविता कामिनी को प्रभावमयी बनाने के लिए अपने काव्य में ऐसे स्थलों का चयन किया है, जो पाठक के मनोभावों को झंकृत कर देते हैं। 'साकेत' में गुप्त जी ने चित्रकूट की राजसभा में कैकेयी द्वारा आत्म–प्रताड़ना की उद्‌भावना की है। कैकेयी स्वयं कहती है–

"युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।"

प्रकृति चित्रण

गुप्त जी ने प्रकृति–चित्रण की लगभग सभी शैलियाँ अपनायी हैं। उन्होंने उद्दीपन रूप में भी प्रकृति के विभिन्न चित्र दर्शाएँ हैं और स्वतंत्र रूप में भी। 'पंचवटी' में प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण दर्शनीय है–

"चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अंबर–तल में।।
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों को नोकों से।
मानो झूम रहे हों तरू भी, मन्द पवन के झोंकों से।।"

इनके काव्य में सन्ध्या, प्रातः रजनी, सागर ऋतु आदि का आलंकारिक चित्रण हुआ है।

1.12 कलापक्षीय विशेषताएँ

गुप्त जी के काव्य का कलापक्ष शैली छन्द तथा अलंकार आदि सभी दृष्टियों से समृद्ध है। इनके काव्य में भावनाओं का विस्तार एवं विविधता ही नहीं, अपितु अभिव्यक्ति का गाम्भीर्य भी विद्यमान है।

भाषा की सहजता

गुप्त जी ने जिस समय हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय खड़ी बोली ने काव्य का रूप ले लिया था; अतः गुप्त जी ने खड़ी बोली के सहज रूप को अपने काव्य का साधन बनाया। उनकी भाषा सरल, सुसंगठित प्रसाद तथा ओजगुण से युक्त है।

गुप्त जी ने अपने काव्य में संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू तथा प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है।

शैली की विविधता

गुप्त जी ने विविध शैलियों में काव्य रचना की है। 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'सिद्धराज' में प्रबन्धात्मक शैली प्रयुक्त की गयी है। 'हिन्दू' और 'गुरूकुल' अलंकृत उपदेशात्मक शैली के उदाहरण हैं। 'पंचवटी', 'भारत–भारती' में विवरणात्मक शैली तथा 'यशोधरा', 'कुणालगीत', 'साकेत' आदि कारणों में नीति शैली का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त 'चन्द्रहास', 'यशोधरा', 'साकेत', आदि में नाट्य शैली का प्रयोग भी कवि ने तन्मयता से किया है।

अलंकार प्रियता

गुप्त जी ने प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु उन्हें सादृश्यमूलक अलंकार अधिक प्रिय हैं। यमक श्लेष और रूपक अलंकारों के प्रयोग में उनकी पाण्डित्य प्रवृत्ति का प्रदर्शन हुआ है।

छन्दों का माधुर्य

गुप्त जी का काव्य छन्दबद्ध है। उन्हें वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द पसन्द हैं। वर्णिक छन्दों में उन्होंने मालिनी, मन्दाकान्ता, बसन्त तिलका, द्रुतविलम्बित इत्यादि तथा मात्रिक छन्दों में दोहा सवैया, आर्या, तांटक, मनहरण, गीतिका आदि छन्दों से अपनी कविता–कामिनी का मधुरिम श्रृंगार किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उर्दू के गजल रूबाई आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

नोटस

हिन्दी साहित्य में स्थान

मैथिलीशरण गुप्त के राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत काव्य को भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। महात्मा गांधी ने इनकी राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत रचनाओं के आधार पर ही इन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया था। हिन्दी काव्य को श्रृंगार रस की दलदल से निकालकर इसमें राष्ट्रीय भावों की पुनीत गंगा को बहाने का श्रेय गुप्त जी को ही है।

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में भाव और कला का मणिकाँचन संयोग है। वे खड़ी बोली के निर्माता और उन्नायक कवियों में से हैं। गुप्त जी युग प्रतिनिधि कवि हैं। गुप्त जी ने भारतीय जीवन को विविध प्रकार से चेतनामय बनाया तथा अपने काव्य में युगीन समस्याओं को प्रस्तुत करके उनका समाधान भी किया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यद्यपि भारत में 'राष्ट्रकवि' के नाम से प्रदान की जाने वाली कोई उपाधि नहीं है, तथापि राष्ट्रोत्थान के आवश्यक तत्व (विशेषताएँ) मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पाए जाते हैं; इसलिए उन्हें 'आधुनिक युग का 'राष्ट्रकवि' कहा जा सकता है।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. मैथिलीशरण गुप्त किस काल के कवि है?

प्र०2. गुप्त जी को किस रचना के आधार पर 'मंगला प्रसाद', 'पारितोषक' मिला?

प्र०3. गुप्त जी की दो प्रसिद्ध रचनाओं के नाम बताइये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. गुप्त जी की प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।

प्र०2. "गुप्त जी राष्ट्रकवि हैं" इस कथन की मीमांसा स्पष्ट कीजिए।

प्र०3. "गुप्त जी ने खड़ी बोली को हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है।" इस कथन पर प्रकाश डालिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. गुप्त जी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र०2. "मैथिलीशरण गुप्त युग चेतना और उसके विकसित होते हुए रूप के प्रति सजग थे" स्पष्ट कीजिए।

प्र०3. गुप्त जी का जीवन परिचय निम्नलिखित बिन्दुओं पर लिखिए–

(अ) जन्म–काल, समय, जन्म–स्थान, माता–पिता, शिक्षा–दीक्षा।

(ब) साहित्यिक अवदान।

खंड
2
जयशंकर प्रसाद

पाठ का प्रारूप

2.1 जीवन परिचय
2.2 रचनाएँ और रचना संसार
2.3 रचनाएँ
- नाटक
- अतिलघुउत्तरीय प्रश्न
- लघुउत्तरीय प्रश्न
- दीर्घउत्तरीय प्रश्न

2.1 जीवन परिचय

महाकवि जयशंकर प्रसाद हिन्दी जगत के लिए प्रसाद स्वरूप हैं। प्रसाद जी प्रथम श्रेणी के कवि, श्रेष्ठ नाटककार, कुशल कहानीकार, उपन्यासकार तथा उच्च कोटि के निबन्धकार हैं। वस्तुतः नवीन युग का द्वार प्रसाद जी ने ही खोला। आज अनेक विद्वान एक स्वर में उन्हें छायावाद का प्रवर्तक और इसका श्रेष्ठ कवि मानते हैं। निश्चय ही ये युग प्रवर्तक साहित्य–सृष्टा थे। इतिहास दर्शन और कला के मणि कांचन संयोग ने उनके काव्य को अपूर्व गरिमा प्रदान की।

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के एक समृद्ध एवं सम्पन्न वैश्य परिवार में सन् 1889 ई० को हुआ था। इनके पूर्वज 'सुंघनी साहू' के नाम से विख्यात शिव के अनन्य भक्त थे। शिवरत्न साहू उनके पितामह थे और वे अत्यन्त दयालु तथा दानी व्यक्ति थे। तम्बाकू और सुरती के इस प्रख्यात व्यापारी परिवार में अत्यन्त व्यवहारकुशल तथा उदार हृदय व्यक्ति देवी प्रसाद ही इनके पिता थे। इनके पिता साहित्य प्रेमी और साहित्यकारों का सम्मान करने वाले थे। घर के इस वातावरण का बालक जयशंकर पर अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रसाद जी का बचपन सुख के साथ व्यतीत हुआ। उन्होंने अपने माता–पिता के साथ देश के विभिन्न तीर्थ स्थानों की यात्रा की। परन्तु दुर्भाग्य से प्रसाद जी के बचपन में ही उनके माता–पिता की मृत्यु हो गयी। ऐसी दशा में प्रसाद जी का पालन–पोषण और शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध इनके बड़े भाई शम्भूरत्न जी ने किया। सर्वप्रथम प्रसाद जी का नाम क्वींस कालेज में लिखवाया गया। परन्तु वहाँ उनका पढ़ाई में मन नहीं लगा, इसलिए उन्होंने घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत तथा फारसी की शिक्षा प्राप्त की। वेद, पुराण, इतिहास और दर्शनशास्त्र का अपने स्वाध्याय से ही उन्होंने सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया। दुर्भाग्य से 17 वर्ष की अवस्था में उनके भाई भी इस संसार से चल बसे। प्रसाद जी की दीर्घायु के लिये गोकर्णनाथ

महादेव की मनौती मानी गई थी। यही कारण है कि इनका नाम भी भगवान शंकर के प्रसाद स्वरूप 'जयशंकर प्रसाद' रखा गया।

जयशंकर प्रसाद को बचपन से ही कविता लिखने में बहुत रूचि थी। सन् 1908 तक प्रसाद जी द्वारा ब्रजभाषा में रचित कविताएँ तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। इनकी कई कविताएँ 'इन्दु' पत्रिका में सम्पादित हुई। कविता और कहानी पर प्रापत पुरस्कारों को इन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। इन्होंने हिन्दुस्तानी अकादमी द्वारा प्रदत्त पुरस्कार वाराणसी की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'काशी नगरी प्रचारिणी सभा' को दान कर दिया। ये शैव मत के अनुयायी थे, किन्तु दूसरे धर्मों का आदर करते थे। उनके धर्म ग्रनथों का अध्ययन करते थे। उनकी पहली कविता नौ वर्ष की अवस्था में ही प्रकाश में आ गई थी। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्हें हिन्दी का 'रवीन्द्र' कहा जाता है। उन्होंने अपनी पारस लेखनी से साहित्य की जिस विधा का भी स्पर्ष किया, उसे कंचन बना दिया।

नोटस

प्रसाद जी ने 11 वर्ष की बाल्यावस्था में अपनी माता के साथ पुरकाजी, ओंकारेश्वर, जयपुर, उज्जैन, ब्रजमण्डल तथा अयोध्या आदि स्थानों की यात्रा की थी। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सम्पदा के अद्भुत दृश्यों का आस्वाद भी उन्होंने लिया था। पर्वतों, झरनों, लहरों और कानन कुसुमों की चाँदनी रातों में विहार भी किया था। जगन्नाथपुरी की यात्रा में सागर की विशालता, गंभीरता तथा उत्ताल तरंगों की गर्जना सुनी थी तो माँ के अंचल में विराजमान हिमगिरी के उत्तुग शिखर का आनन्द भी लिया था। इन्हीं सब अद्भुत प्रकृति शक्तियों ने कवि हृदय को प्रेरणा की। पारिवारिक बाधाओं और विपदाओं से विचलित न होकर अडिग रहने वाले प्रसाद ने जीवन की सभी विषम परिस्थितियों का सामना किया और सदैव आनन्द को जीवन का लक्ष्य माना। उन्होंने इसी दृष्टिकोण को स्वर देते हुए विश्व के महान महाकाव्य "कामायनी" में लिखा भी है–

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।

संस्कृत और अंग्रेजी के नियमित अध्ययन से उन्हें वेद, उपनिषदों के साथ–साथ पुराण, महाभारत तथा अन्य ऐतिहासिक–सांस्कृतिक महाकाव्यों एवं ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा मिली। भारतीय संस्कृति के प्रति यहीं से श्रृद्धा उत्पन्न हुई तो अतीत के प्रति रूचि भी जागृत हुई।

व्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि के महापुरूषों में गिने जाने वाले महाकवि प्रसाद ने परिवार और व्यापार के कठिन उत्तरदायित्वों को संभालते हुये भी गहन अध्ययन एवं मनन के दृढ़ सम्बल तथा नैसर्गिक प्रतिभा के वरदान से जो कुछ भी भारतीय साहित्य को दिया, उस पर हम सभी को गर्व है। हमारा दुर्भाग्य ही है कि "छोटे से जीवन की कैसे, बड़ी कथाएँ आज कहूँ" कहने वाला बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न वह महान कलाकार व्यक्तित्व, अधिक दिनों तक हमारा मार्गदर्शन न कर सका। जनवरी सन् 1937 में प्रसाद जी बीमार पड़ गए और चिकित्सकों ने घोषित कर दिया कि उन्हें राज्यक्षमा हो गया है। दिन–प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता गया। डॉक्टरों ने उन्हें काशी छोड़कर पहाड़ों पर जाने की सलाह दी, किन्तु प्रसादजी कभी काशी छोड़ना नहीं चाहते थे। परिणामतः सन् 1937 में 48 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने यह शरीर छोड़ दिया।

विश्व साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाला वह आकर्षक तथा प्रभावशील व्यक्तित्व जिसने "कामायनी" जैसा उत्कृष्ट महाकाव्य देकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया, दुर्भाग्य से असामयिक मृत्यु का शिकार हो गया। इस युगान्तकारी भव्य व्यकित के व्यक्तित्व तथा उद्देश्य को समझने के लिए उन्हीं की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक जान पड़ती हैं–

इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
शान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक,
जिसके आगे राह नहीं।

2.2 रचनाएँ और रचना संसार

भावनाओं के मधुर गायक तथा काव्य की विशिष्ट सृष्टि के निर्माता जयशंकर प्रसाद जितने महान हैं, उनका रचना संसार भी उससे कम विशाल या विराट नहीं। इस महान कृतिकार ने कविकर्मी जीवन साधना में संसार के अनुभवों की मार्मिक प्रतिक्रिया को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर साहित्य को प्रेरणा प्रदान की तथा पूरे संसार को एक नव्य–बोध भेंट किया। सांस्कृतिक चेतना से ओत–प्रोत साहित्य भंडार देने वाले बहुमुखी प्रतिभा के इस धनी व्यक्तित्व ने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबंध जैसी कई विधाओं में एक साथ मानव समाज देश, तथा युग की अनेकों समस्याओं को ही उजागर नहीं किया उनके समाधारन की राह भी प्रशस्त की। पद्य और गद्य में बराबर अधिकार रखते हुए इतिहास और संस्कृति के समर्थ आख्याता बने। महाकवि प्रसाद पूरे हिन्दी साहित्य में सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं। अपने व्यक्तिवादी रूप में वेदना, करूणा तथा प्रेम दर्शान की अभिव्यक्ति करते हुए प्रसाद एक उच्चतम भाव–भूमि पर पहुँचते हैं और यही समग्र विश्व का आत्मवाद, आनन्दवाद तथा आध्यात्मिकता की भावना से परिचय भी कराते हैं।

2.3 रचनाएँ

जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने विविध विधाओं में 67 रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

काव्य रचनाएँ

कामायनी– यह महाकाव्य छायावादी काव्य का प्रथम उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसमें मनु और श्रृद्धा के माध्यम से मानव को ह्रदय (श्रृद्धा) और बुद्धि (इड़ा) के समन्वय का महान संदेश दिया है। इसके साथ ही इसमें मानव सभ्यता के विकास की कथा रूपक के द्वारा प्रस्तुत की गई है।

आँसू– यह प्रसाद जी का विशुद्ध विरह–काव्य है। इसमें सौन्दर्य और प्रेम का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है।

झरना

इस काव्य कृति में प्रेम और सौन्दर्य के साथ प्रकृति के मनोरम रूप का चित्रण देखने को मिलता है। यह प्रसाद जी की छायावादी कविताओं का संग्रह है।

लहर

इसमें छायावाद का प्रौढ़तम रूप पल्लवित हुआ है।

नोटस

कानन–कुसुम

यह प्रसाद जी की फुटकर रचनाओं का संकलन है। सन् 1909 से सन् 1917 तक की 49 स्फुट कविताएँ एकत्र की गई हैं।

चित्राधार

इसमें प्रसाद जी की ब्रजभाषा की कविताएँ हैं। यह कवि की सबसे पहली काव्य कृति हैं। सन् 1909 से 1912 तक की पाँच रचनाएँ उसमें समाहित हैं।

"अयोध्या का उद्धार", "वन–मिलन", "प्रेम–राज्य" (पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध), "पराग" और "मकरन्द बिन्दु" नामक इन रचनाओं में "पराग" ऐसा काव्य संग्रह है जिसमें 24 स्फुट कविताएँ संकलित हैं। इसके बाद "प्रेम–पथिक", "करूणालय" तथा "कानन कुसुम" सन् 1913 में प्रकाशित हुईं। सन् 1914 में "महाराजा का महत्व" प्रकाशित हुई।

प्रसाद जी ने अपनी काव्य–यात्रा आठ–नौ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ कर दी थी। नौ वर्ष की अवस्था में प्रसाद को संस्कार सम्पन्न कराने के लिये जौनपुर और विन्ध्यांचल ले जाया गया तो पर्वतीय सुषमों और भूमि के अंक में कलकल नाद करते झरनों के प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि के बाल–हृदय को मुग्ध कर दिया। इसी प्राकृतिक वैभव पर रीझकर उन्होंने "कलाधर" उपनाम से कविता का सृजन किया था। 1906 में यह कविता 'भारतेन्दु' में प्रकाशित भी हुई थी।

हारे सुरेश रमेश धनेश गनेशह, सेस न पावत पारे।
पारे हैं कोटिक पातकी पुंज कलाधर ताहि दिनोबिच तारे।
तारेन की गिनती सम नाहिं, सुवेते तरे प्रभु पापी बिचारे।
चारे चले न विरंचहि के, जो दयालु है संकर नेक निहारे।

ब्रजभाषा में कविता लेखन प्रारम्भ करने वाले इस कवि ने "इन्दु" पत्रिका के दूसरे अंक में "प्रेम–पथिक" प्रकाशित कराया।

मूलतः ब्रजभाषा में लिखी गई इस रचना को बाद में कवि ने खड़ी बोली में रूपान्तरित भी किया। अधिक दिनों तक ब्रजभाषा में कविता न करने वाले प्रसाद ने अपने भावों को युग और परिवेश की अपेक्षा के अनुसार ही खड़ी बोली में ढालना प्रारम्भ किया। धीरे–धीरे वे खड़ी बोली के शीर्षस्थ कवि पद पर आ विराजे। भाषा, छन्द, भाव तथा विचार की दृष्टि से अनेकरूपता में भी समसता पैदा करने वाला यह गंभीर चिंतक आरम्भ में अयोध्यासिंह उपाध्याय की तरह संस्कृत गर्भित शैली को अपनाकर भी, उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन करता है और अर्न्तमुखी कल्पना से सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास करता है। ब्रजभाषा में लिखित प्रारम्भिक कविताओं में प्रसाद प्रकृति को उद्दीपन के रूप में नहीं, आलम्बन के रूप में ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद की कविताओं में प्रसाद ने संस्कृत साहित्य के भीतर से एक सुसंस्कृत प्रेरणा प्रापत कर कविता में अपनी नूतन भाव–अभिव्यक्ति के द्वारा हिन्दी काव्य संसार में ही नहीं समूचे विश्व काव्याकाश में की तथा अपना वैशिष्टय और नेतृत्व सिद्ध कर दियाा।

प्रसाद का अध्ययन गहन आझैर व्यापक था। वेद, उपनिषद, इतिहास और संस्कृति काव्य का मननपूर्ण अध्ययन ही उनके कविता के उद्देश्य को निर्धारित करता है।
"आँसू" के अन्त में कवि कहता है–

सबका निचोड़ लेकर तुम,
सुख से सूखें जीवन में,

बरसों प्रभात हिमकन–सा
आँसू इस विश्व सदन में।

प्रसाद जी ने अपनी सभी काव्य–कृतियों में ऐतिहासिक सांस्कृतिक मूल्यों को धरोहर रूप में संजोया संवारा और निखारा है। "प्रेम–पथिक" में प्रकृति का वैभव, प्रेम की अपारता तथा प्रेम का उदात्त, निर्मल एवं अलौकिक महत्व एक पथिक की यात्रा के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

'अयोध्या का उद्धार में अयोध्यानरेश महाराजा राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश द्वारा अयोध्या के पुनरूत्थान का वर्णन किया गया है। यह कालिदासकृत 'रघुवंश' के सोलहवें सर्ग पर आधारित है।
इसमें प्राकृतिक सुषमा के सुन्दर वर्णान के साथ–साथ राजा के कर्त्तव्य कर्म की भी सराहनीय व्याख्या की गई है।

"कानन–कुसुम" के अन्तर्गत आख्यानक प्रकृति–विषयक, भक्ति–विषयक और प्रेम–विषयक कविताएँ संकलित की गई हैं। महापुरूषों के प्रशस्तिगान तथा कुछ सामयिक समस्याओं को भी इन कविताओं में उजागर किया गया है।

पौराणिक और ऐतिहासिक आधार पर लिखित चित्रकूट, भारत, श्रीकृष्ण जयन्ती, कुरूक्षेत्र तथा वीर बालक आदि कुछ कविताएँ इसमें प्रमुख हैं। प्रभो नमस्कार, वंदना तथा विनय आदि कुछ कविताएँ भक्ति विषयक हैं। खड़ी बोली में रचित इन कृति में ही इन्द्रधनुष, चन्द्रोदय तथा प्रभातिक कुसुम जैसी छायावादी काव्य–रचनाएँ पहली बार प्रकाश में आई।

गद्य रचनाएँ

नाटक

'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'अज्ञातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', राज्यश्री', 'सज्जन', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'करूणालय', 'विशाख' आदि।

निबन्ध संग्रह

'काव्य कला' तथा अन्य निबन्ध।

कहानी संग्रह

'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', इन्द्रजाल' और 'आँधी'।

उपन्यास

'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अपूर्ण)।

करूणालय गीति नाट्य के ढंग पर लिखी गई महत्वपूर्ण कृति है। इसमें पाँच दृश्य है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र द्वारा शुनः शेष के नरमेध यज्ञ में बलि दिये जाने की कथा का सुन्दर वर्णन किया गया है। नरमेध यज्ञ के इस युग को सामायिक समस्या के परिपेक्ष्य में देखने का सफलतम प्रयास प्रसाद ने किया है। भाषा खड़ी बोली ही है। "महाराणा का महत्व" शीर्षक काव्य कृति के अन्तर्गत रहीम खान खाना की बेगम को

नोटस

नोटस

राजपूतों द्वारा बंदी बनाये जाने और महाराणा प्रताप द्वारा उन्हें मुक्त कराके उनके पति के पास ससम्मान पहुँचा देने की ऐतिहासिक घटना का मार्मिक वर्णन है। कवि प्रसाद की अनुपम कल्पना और इतिहास की वीरता भरी गाथा का बिम्बात्मक वर्णन सराहनीय बन पड़ा है। ओज भरी, भाषा कविता की शक्ति बनी है। 'आँसू' प्रसादजी का उत्कृष्ट, गम्भीर, विशुद्ध मानवीय विरह काव्य है, जो प्रेम के स्वर्गीय रूप का प्रभाव छोड़ता है। इसीलिये कुछ लोग इसे आध्यात्मिक विरह का काव्य मानने का आग्रह करते हैं।

'आँसू' में शुद्ध रहस्यात्मक अनुभूति तथा लौकिक विरह भावना का अद्‌भुत मिश्रण है। रहस्यवादी भाव धारा वाली यह कृति छायावाद की अन्यतम कृति है। व्यापक प्रेम के इस अमर प्रेमी कवि ने इस कृति में सुख–दुःख में एक स्वस्थ सामन्जस्य स्थापित करना चाहा है। प्रतीक विधान तथा 28 मात्राओं वाला 'आँसू' छन्द इस कृति की विशिष्ट पहचान बनाते हैं।

'झरना' के अन्तर्गत वैयक्तिक प्रेम और विरह की एक अविरल धारा प्रवाहित होती है और यह 'आँसू' में ढलकर लहर में समाहित हो जाता है। मांसल अनुभूति धीरे–धीरे सूक्ष्म और छायात्मक बनती जाती है। व्यक्तिगत व्यथा धीरे–धीरे प्रकृति के कण–कण में परिवर्तित होने लगती है। युवा–मिलन की प्रेम पगी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद तथा विरह मिलन की हृदयस्पर्शी अ भिव्यक्ति इसमें हुई है। यहीं रहस्यवादी विरह की व्यंजना भी पहली बार देखने को मिलती है। इस कृति में प्रसाद की भाषा और शैली निरंतर अपना रंग दिखाती आयी है।

"लहर" तक आकर भावना की अश्रु धाराएँ धीरे–धीरे बौद्ध दर्शन की वैचारिक लहरों में समाने लगती है। बौद्ध दर्शन की करूणा कवि को एक नई दृष्टि देती है। यहीं आकर कवि 'आनन्दवाद' की कल्पना करता है। प्रसाद जी का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवीय रहा है। वे जीवन की चिरन्तन समस्याओं का कोई चिन्तन माननीय समाधान खोजना चाहते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य ही उच्च मानवता है, उसी की प्रतिष्ठा प्रसाद जी ने की है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का यह समन्वय ही भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है और कामायनी के माध्यम से यही संदेश प्रसाद जी ने सम्पूर्ण मानवता को दिया। आनन्दवाद की यह कल्पना 'कामायनी' तक आते–आते साकार होती है। पन्द्रह सर्गों के इस अन्यतम महाकाव्य में प्रसाद की काव्य प्रतिभा अपने चरम शिखर पर पहुँचकर सम्पूर्ण विश्व को प्रदीप्त करने लगती है। प्रतीकों के माध्यम से अन्य अर्थों को सफलतापूर्वक वहन करती, यह कर्मकथा भावों के अमूल्य रत्नों की धरोहर है। कामायनी प्रसाद–काव्य की सिद्धावस्था है। उनकी काव्य–साधना का पूर्ण परिपाक है। कवि के शाश्वत स्वरूप एवं मानव के मूल मनोभावों का काव्यमय चित्र अंकित किया है। प्रसाद जी ने नारी को दया, ममता, त्याग, बलिदान, सेवा, समर्पण, अगाध विश्वास आदि से युक्त बताकर उसे श्रृद्धा का स्वरूप प्रदान किया है।

'नारी तुम केवल श्रृद्धा हो'

काव्य,दर्शन और मनोविज्ञान की त्रिवेणी 'कामायनी' निश्चय ही आधुनिक काल की सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक रचना है।

प्रसाद जी छायावादी कवि हैं। प्रेम और सौन्दर्य उनके काव्य का प्रधान विषय है। मानवीय संवेदना उसका प्राण है। प्रकृति को सचेतन अनुभव करते हुये उसके पीछे परम सत्ता का आभास कवि ने सर्वत्र किया है। यही उनका रहस्यवाद है। प्रसाद जी का रहस्यवाद भाव सौन्दर्य से संचालित प्रकृति का रहस्यवाद है। अनुभूति की तीव्रता, वेदना, कल्पना–प्रवणता आदि प्रसाद काव्य की कुछ अन्य विशेषताएं हैं। प्रसाद जी व्यापक सौन्दर्य के उपासक हैं। प्रसाद जी के काव्य में देश प्रेम की पावन धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। प्रसाद जी प्रकृति के कुशल चित्रकार हैं। उन्होंने प्रकृति पर सर्वत्र चेतना का आरोप किया है। आनन्द और आस्था के मार्गदर्शक प्रसाद ने कामायनी में बुद्धिवाद का विरोध करते हुए शैव दर्शन के आनन्दवाद को ही जीवन के पूर्ण उत्कर्ष का साधन घोषित किया है।

प्रसाद के समग्र काव्य संसार में एक आलौकिक तथा विलक्षण शक्ति विद्यमान है और उनके प्रगीतों में यह शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है। जीवन और दर्शन में परस्पर निर्भरता सिद्ध करते हुए इस महाकवि ने पौराणिकता एवं ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में समूचे संसार को उदबोधित करते हुए कहते भी हैं–

'भुनती वसुधा तपते नग
दुखिया है सारा अग जग
बह जा बन करूणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग।'

छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद जी की काव्य भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। आरम्भ में यह सहज और सरल है लेकिन ज्यों–ज्यों प्रसाद का अध्ययन बढता गया त्यों–त्यों उनकी भाषा गम्भीर और परिष्कृत भी होती गई। सूत्र भरे वाक्यों और संगीतमय गीतों में एक अद्भुत उन्माद है और यही उसका व्यावहारिक पक्ष है। प्रसाद के गीतों में वाक् वैदग्ध्यपूर्ण उक्तियों के माध्यम से वक्रता के भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं। सीधी सरल उक्तियों में वक्रोक्ति एक विशेष अर्थ भर देती है। प्रसाद इस कला में अत्यंत निपुण हैं– 'तपस्वी के विराम की प्यार तथा दूध भरी दूध सी दुलार भरी माँ की गोद' आदि पंक्तियों में प्रसाद जी की यह कलात्मकता भी देखी जा सकती है।

प्रसाद जी की काव्य भाषा का एक अन्य वैशिष्टय है। 'वर्ण–संगीत का प्रभावी प्रयोग' प्रसाद जी के काव्य में मुहावरों का प्रयोग दृष्टव्य है–

'कौड़ी के मोल बेचा जीवन का मणिकोष
और आकाश को पकड़ने की आशा में
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते जिसको मर करवीर।
और निरूपाय मैं तो ऐंठ उठी डोरी सी।'

प्रसाद जी की शैली में लटा और गीत का सामन्जस्य हैं प्रसाद ने लम्बे और छोटे दोनों प्रकार के गीत लिखे हैं। "टेक" की पंक्ति अपेक्षानुसार छोटी बड़ी होकर गीत के सौन्दर्य में वृद्धि करती हैं प्रसाद जी की 'चतुर्दशपदी' का सुन्दर प्रयोग भी शैली में चार चाँद लगाता है।
'निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप पाओगे'

इसका सुन्दर उदाहरण है। देश प्रेम की भावना से प्रभावित होकर वे वीररस भरी ओजमयी शैली अपनाकर मनमोहक शब्दचित्र बना देते हैं। उनका काव्य चम्पू काव्य और खण्ड काव्य आदि कई रूपों में मिलता है।

अतः हम कह सकते हैं कि श्रृंगार, वीर, करूण, शांत तथा वात्सल्य आदि के सुन्दर काव्य चिन्ता, लज्जा, निर्वेद तथा काम आदि अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने वाला महान एवं अद्वितीय शैली का काव्य हैं।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. जयशंकर प्रसाद को किस युग का प्रर्वतक माना जाता है?

प्र०2. जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम बताइए?

प्र०3. जयशंकर प्रसाद की मृत्यु कब हुई?

नोटस

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. प्रसाद जी की प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।

प्र०2. प्रसाद जी का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए?

प्र०3. "प्रसाद जी का बचपन संघर्ष में बीता।" इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. प्रसाद जी का जीवन परिचय देते हुए उनकी प्रमुख काव्य कृतियों पर प्रकाश डालिए?

प्र०2. प्रसाद जी का हिन्दी साहित्य में योगदान विस्तारपूर्वक लिखिए।

प्र०3. "कामायनी" प्रसाद जी का एक महाकाव्य है।" इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए?

खंड

3
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

पाठ का प्रारूप

3.1 प्रस्तावना
3.2 जीवन परिचय
3.3 साहित्यिक अवदान
3.4 काव्यगत विशेषताए
- ❑ **अति लघु उत्तरीय प्रश्न**
- ❑ **लघु उत्तरीय प्रश्न**
- ❑ **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

3.1 प्रस्तावना

डॉ० पदम सिंह शर्म 'कमलेश' ने ठीक कहा है "कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं जिनका जीवन तो महान नहीं होता पर साहित्य महान् होता है। इसके विपरीत कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं जिनका जीवन महान् होता है पर उनका साहित्य महान् नहीं होता है, किन्तु कुछ साहित्यकार ऐसे भी होते हैं जिनका जीवन और सहित्य दोनों ही महान् होते हैं। निराला जी ऐसे ही साहित्य–सृष्टा थे। उनका जीवन और साहित्य दोनों ही असाधारण ऊँचाई लिए हुए हैं।" वास्तव में जितने अधिक तर्क–वितर्क विरोधी धारणाएँ और अद्‌भुत मत विराला को लेकर हैं, इतने शायद अन्य किसी हिन्दी साहित्यकार को लेकर आज तक नहीं हुए हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है निराला के जीवन और व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी तत्वों का निहित होना और उनका विचित्र होना। महाप्राण निराला के काव्य में कोमल और कठोर पक्षों का, अध्यात्म और व्यवहार का, भावुक एवं क्रांतिकारी रूप का विशेष परिचय दिया गया है। निराला छायावाद के सर्वाधिक चर्चित कवि रहे हैं उनके विराट और उदात्त व्यक्तित्व की झलक हमें उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखने को मिलती है। निराला की तरह ही उनका काव्य जगत भी निर्बन्ध है। व्यंग्य विनोद का तीखा और उन्मुक्त रूप, यथार्थ का जीवन्त चित्रण एवं सामाजिक जीवन की कटु अनुभूतियों का सजीव निरूपण हमें निराला काव्य में एक ओर देखने को मिलता है तो दूसरी ओर सुसंस्कृत भाव चेतना का वह रूप भी मिलता है जहाँ काव्य अध्यात्मक की स्वतः ही अद्वैतपरक व्याख्या करता है। निराला सार्वभौम प्रतिभासम्पन्न कलाकार हैं। काव्य, कहानी, निबंध, संस्मरण तथा उपन्यास आदि साहित्य की विविध विधाओं में उनकी प्रतिमा समान रूप से शोभा पाती है। हिन्दी साहित्य में निराला को पौरूष के कवि कहकर समानित किया जाता है।

नोटस

3.2 जीवन परिचय

निराला जी की जन्म विधि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "निराला का जन्म माघ सुदी एकादशी सम्वत् 1955 को हुआ।" डॉ० श्यामसुन्दर दास और विश्वम्भर मानव (काव्य का देवता–निराला) इसको सही बताते हुए सम्वत् 1953 मानते हैं। रामविलास शर्मा, बच्चन सिंह, राहुल और स्वयं निराला बसन्त पंचमी सम्वत् 1953 (1896) को जन्म दिवस मानते हैं जबकि निराला के पुत्र श्री रामकृष्ण साप्ताहिक हिन्दू निराला अंक इसको 1890 मानते हैं। सामान्यतः उनका स्थान महिषा दल, जिला मेंदिनीपुर (बंगाल) माना जाता है यद्यपि कुछ आलोचकों के अनुसार "इनकी धमनियों में उन्नाव जिले (उत्तर प्रदेश) के बैसवाड़े का प्रभाव था।" सामान्य रूप से निराला का जन्म सन् 1896 ई० में बसंत पंचमी के दिन हुआ माना जाता है। निराला के पिता का नाम पण्डित राम सहाय त्रिपाठी और माता का नाम रूक्मिणी देवी था। अनुश्रुति है कि उनकी माता सूर्य का व्रत रखा करती थी और निराला का जन्म भी रविवार को हुआ। यही कारण है कि उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म महावीर हनुमान की पूजा के दिन मंगलवार को हुआ। निराला के पिता महावीर के भक्त थे। यही सोचकर पण्डित ने उनका नाम सुर्जकुमार रख दिया। लेकिन सन् 1917–18 के लगभग उन्होंने अपना नाम बदलकर सूर्यकान्त त्रिपाठी कर लिया और निराला उपनाम उन्होनें "मतवाला" पत्र के सम्पादन काल में रखा। सिपाहियों के साथ रहकर उन्होंने सीखी घर पर बैसवाडी बोली जाती थी। इस प्रकार से निराला ने बंग्ला, संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और अवधी का ज्ञान इन्होंने हाई स्कूल में ही अर्जित कर लिया था। हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं विशेषकर 'सरस्वती' से उन्हें विशेष लगाव अनुभव हुआ और हिन्दी में लिखने की प्रेरणा भी उन्होंने यहीं से प्राप्त की।

शिक्षा अर्जन के साथ–साथ निराला को अपने शारीरिक विकास का अवसर भी मिला। कुश्ती लड़ने, घुड़सवारी करने एवं बंदूक चलाने में निराला ने विशेष योग्यता अर्जित कर ली। इसके अतिरिक्त संगीत में भी उनकी गहन रूचि थी। निराला का कण्ठ–स्वर बहुत ही सधा हुआ था। अपनी स्कूली शिक्षा को निराला ने हाई स्कूल के बाद ही विराम दे दिया। कारण निराला को किसी ने कह दिया कि प्रतिभाशाली व्यक्ति कभी परीक्षाओं के चक्कर में नहीं पड़ते, स्वयं रवीन्द्रनाथ नवीं पास हैं। बस निराला ने ठान लिया किरवीन्द्र से कम थोड़े ही हैं और उन्होंने भी परीक्षा नहीं दी तांकि नवीं कक्षा पास ही रहे।
निराला का विवाह चौदह वर्ष की आयु में मनोहरा देवी के साथ हुआ। मनोहरा देवी देखने में तो मनोहर ही थीं, गुण सम्पन्न और गृह कार्य में दक्ष भी थीं। निराला को हिन्दी में साहित्य–सृजन करने की प्रेरणा भी मनोहरा देवी से ही मिली। निराला अपनी पत्नी के प्रति अनन्य प्रेम का भाव रखते थे, किंतु निराला का वैवाहिक जीवन चार–पाँच वर्ष की अल्प सीमा पर आकर बिखर गया। पत्नी की मृत्यु से निराला का अन्तर्मन टूट कर बिखर गया। निराला के काव्य में इस पीड़ा की गहन अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कवि की यह पीड़ा यहीं समाप्त नहीं हो जाती है, परिवार के अनेक सदस्य इसी बीच निराला को छोड़कर संसार से विदा हो गए। निराला के भावुक मन के लिए पत्नी–विछोह वज्रपात से कम नहीं था, ऊपर से अपने दो बच्चों और परिवार के अन्य बच्चों के पालन–पोषण की व्यवस्था का भार भी इन्हीं पर आन पड़ा। इन सभी विषय परिस्थितियों में निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। निराला के व्यक्तित्व में एक ओर करूणा तथा जगती की नश्वरता का भाव मिला है तो दूसरी ओर विद्रोह एवं क्रांति का स्वर भी मिला है।

निराला के जीवन में दुःख और अभावों का सिलसिला जीवन–पर्यन्त चलता रहा। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् जो अनन्य जबरदस्त आघात उन्हें लगा, वह था पुत्री 'सरोज' का युवावस्था में अकाल मृत्यु मुख में चले जाना। एक के बाद एक प्रिय जन के विछोह में निराला जहाँ टूटे हैं, वहीं अपने अंतर से शक्ति–ग्रहण कर जीवन–संघर्षों से जूझे भी हैं। यही कारण है कि निराला के व्यक्तित्व में हम संघर्ष प्रियता, रूढ़ियों के विरोध तथा विद्रोह के स्वर को विशेष रूप से देखते हैं। दूसरी ओर करूणा का ऐसा

मोहक रूप पाते हैं जो दूसरों के दुःखों और अभावों में अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है। अनेक बाह्य व्यक्तित्व की झलक कुछ इस प्रकार थी– "कद लगभग छः फुट चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से परिपूर्ण आँखे, विशाल बाहु, लम्बे बाल"; इसी कारण कोई उन्हें 'अपोलो' कहता है तो कोई 'विवेकानन्द'। सन् 1920 ई० में राज्य की नौकरी छोड़कर पूर्ण संकल्प से निराला ने साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया और अन्त तक उसी को ही अपना जीवन मानकर चले। 15 अक्टूबर 1961 को महाप्राण निराला ने अपने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

नोटस

3.3 साहित्यिक अवदान

महाकवि निराला का जीवन वैविध्यपूर्ण है, इसलिए उनका काव्य भी अनेक विलक्षणताओं से भरा हुआ है। जीवन के अनेक रूपों को कवि ने देखा और भोगा है। प्रतिकूल परिस्थितियों ने उनके कवि–मानस को तराशा और उन्हें समर्था सृजक के रूप में साहित्य जगत में प्रतिष्ठित किया। छायावादी काव्य का आरम्भ सन् 1918 के आसपास माना जाता है। निराला की प्रथम रचना 'जूही की कली' में ही प्रेम का यह रूप देखा जा सकता है, जिसमें सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण है और दूसरी ओर चित्रित सौंदर्य अनन्त काल का अचल भी स्पर्श करता दिखाई पड़ता है। साथ ही साथ कवि ने रति–क्रीड़ा के चित्र को एक प्रतीक के रूप में भी परिवर्तित कर दिया है। यही निराला की रूप में अरूप की उपास ना है।

'सोती थी,
जाने कहो' कैसे प्रिय आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल–
इस पर जागी नहीं–
निर्दय उस नायक ने
निपट ठकुराई की,
कि झोकों की झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मराल दिये गोरे कपोल गोल'।

उपर्युक्त उदाहरण में तटस्थता, पवित्रता, अलौकिकता, स्वच्छन्दता और विरह प्रधानता निराला के प्रेम–भाव की विशेषताएँ हैं। 'प्रिया के प्रति', 'प्रिया से', 'रेखा', 'नयनों का बन्धनल' आदि कविताओं में निराला के प्रेम का यही रूप मुखरित हुआ है।

निराला साहित्य साधना में पूरी तन्मयता से लीन थे। निराला की प्रारम्भिक तन्मयता से लीन थे। निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में "अनामिका" (प्रथम) (सन् 1936) एवं "परिमल" (द्वितीय) (सन् 1938) हैं। अनामिका (प्रथम) में मात्र सात कविताएँ थीं। वे आगे चलकर अन्य संग्रहों में ले ली गईं। वास्तव में "परिमल" को ही उनकी प्रथम काव्य कृति होने का गौरव प्राप्त है। इससे पूर्व निराला "मतवाला" में "जूही की कली" नामक कविता के माध्यम से साहित्य जगत में अपने कवि रूप की पहचान बना चुके थे। "परिमल" में निराला लिखित 1930 तक की कविताएँ संकलित हैं। स्वच्छन्द छन्द की कविताएँ उनके इस प्रारम्भिक सृजन में प्राप्त हो जाती हैं। "परिमल" में लगभग 78 रचनाएँ हैं जिन पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि अनेक काव्य की अनेक धाराओं में बहने की अपरिमित सम्भावनाएँ निहित हैं। इस काव्य संग्रह के अधिकांश गीत दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता की भावना से परिपूर्ण हैं। कुछ कविताएँ राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना को वाणी प्रदान करने वाली हैं। समाज के दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति कवि–हृदय

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

नोटस

में जो असीम करूणा का भाव रहा वह भी "परिमल" की कविताओं में मुखरित हुआ। निराला का प्रसिद्ध गीत "तुम और मैं", "माया", "विधवा", "भिक्षुक", "बादल राग" एवं "जागो फिर एक बार" आदि "परिमल" की अनेक रचनाएँ हैं जो निराला के समर्थ कवि रूप को साहित्य लोक में स्थापित कर गई।

"परिमल" के पश्चात् निराला ने लगभग 101 गीतों के संग्रह के रूप में "गीतिका" की सृष्टि की। इस संग्रह की कविताओं में निराला ने कई प्रयोग किए हैं। अद्वैतवादी काव्य रचनाओं की संख्या यहाँ पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है। "कौन तम के पार रह कह" एवं "पास ही रे हीरे की खान" आदि गीतों में रहस्य की भावना का संस्पर्श स्पष्टतः देखा जा सकता है। सन् 1938 में निराला का तीसरा काव्य संग्रह अनामिका प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ 56 कविताओं को संगृहीत किया गया है। इसमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की रचनाएँ एक साथ रखी गई हैं। "सरोज स्मृति", "वह तोड़ती पत्थर" और "राम की शक्ति पूजा" विशेष चर्चित काव्य रचनाएँ हैं। इसमें भी "यम की शक्ति पूजा" सबसे अधिक सशक्त और प्रौढ़तम रचना मानी जाती है। निराला के कृतित्व की अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि है– "तुलसीदास"। महाकाव्योचित शैली में रचित यह प्रबन्ध कृति निराला काव्य की अक्षय–कीर्ति का आधार है।

साहित्य में सर्वधा नए आयाम को लाने वाली रचना "कुकुरमुत्ता" निराला के सृजक रूप को एक नया मोड़ प्रदान करती है। इसकी भाषिक संरचना ठेठ शब्दावली पर आधारित है। "कुकुरमुत्ता" में काव्य के पारम्परिक मानदण्डों से पूर्णतः भिन्न शैली को कवि ने अपनाया है। "अणिमा", "बेला" और "नये पत्ते" आदि काव्य संग्रह प्रगतिशील एवं प्रयोगवादी रचनाओं से अनुष्ठित हैं। "अणिमा" में कवि की एकाकी भावना की पीड़ा और भक्ति का स्वर भी यत्र–तत्र देखा जा सकता है। प्रयोगवादी ढर्रे की कविता "चूँकि यहाँ दाना है" अपनी विचित्र प्रकार की संरचना के कारण उल्लेखनीय है। इस कविता में पूँजीवादी संस्कृति पर तीखा व्यंग्य प्रहार किया गया है। "बेला" में निराला ने अनेक रंगों के गीतों की सृष्टि की है।

"अर्चना", "आराधना", "गीत गुंज" ये तीनों गीत संग्रह निराला की अन्तिम स्थिति हैं। निरन्तर संघर्षों से जूझने के कारण निराला का मानसिक संतुलन डगमगा गया, उस अवस्था का रूप इन गीतों में कहीं–कहीं देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भक्ति भावना, विनय और प्रार्थना मिश्रित करूणा की आभा किए कुछ गीतों की भी रचना उन्होंने की है। काव्य के अतिरिक्त निराला ने "निरूपमा", "अपसरा", "प्रभावती" तथा "काले कारनामें" आदि उपन्यासों की भी रचना की है। कहानी के क्षेत्र में निराला की महत्वपूर्ण देन "लिली", "देवी", "सखी", "सुकुल की बीवी" और "चतुरी–चमार" है। "कुल्लीभाट" और "बिल्ले सुर न करिहा" इनके प्रसिद्ध रेखाचित्र हैं। श्रेष्ठ समालोचक और समीक्षक के रूप में निराला की "रवीन्द्र कविता कानून", "पन्त और पल्लव", "चाबुक", "प्रबन्ध पद्य", "प्रबन्ध प्रतिभा" तथा "चयन" आदि कृतियों का विशेष महत्व है। निराला की साहित्य यात्रा का परिचय यह स्पष्ट करता है कि ये सभी रचनाएँ एक समर्थ सृजक के अन्तर्मन की अनेक स्थितियों को आभासित करती हैं निश्चय ही महाप्राण निराला का साहित्य भी महान है।

3.4 काव्यगत विशेषताएँ

निराला नव जागरण काल के कवि हैं। राष्ट्र को पराधीनता के बंधन से मुक्त देखने की लालसा उस काल के प्रायः सभी कवियों के काव्य का मुख्य विषय रहा है। निराला काव्य में राष्ट्रीय भावना का धरातल बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है। निराला ने असंख्य गीतों में भारत के गौरव का गान, माँ भारती का सतशः स्मरण कर जातीय जीवन में उत्तेजना के प्राण फूँके हैं। भारतीय जन मानस में उद्‌बोधन का संचार करते हुए निराला "तुलसीदास" में जागरण का संदेश इस प्रकार से देते हैं:–

"जागो, जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीति अन्धरात।"

इसके लिए कवि आत्म बलिदान हेतु माँ भारती के चरणों में भावपूर्ण समर्पणा करते हुए कहता है:

"बाधाएँ आएँ तन पर
देखूँ तुझे नयन निर्भर
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय–श्रम–सिंचित फल।"

राष्ट्रीयता के अतिरिक्त अद्वैत तत्व की सम्वेदना का संस्पर्श निराला काव्य की अन्तर्वस्तु में मुख्यता से गाया जाता है। निराला के जीवन पर रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द के विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। "परिमल", "अनामिका", "गीतिका", "अर्चना", "बेला" एवं "अणिमा" इत्यादि में निराला की अद्वैत भावना को देखा जा सकता है। निराला काव्य में पीड़ा एवं करूणा की गहरी व्यंजनाएँ देखने को मिलती हैं। कवि की संवेदना का विस्तार स्तर से लेकर जगती की विभिन्न बदलती हुई परिस्थितियों तक छाया हुआ है। निराला जी का काव्य भावपक्ष की दृष्टि से अत्यन्त सबल और प्रौढ़ है। उनके काव्य का भावपक्ष उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। निराला जी जीवन–पर्यन्त विद्रोह में संघर्ष करते रहे। अतः उनकी कविता में स्वच्छन्दता एवं विद्रोह का प्रखर रूप से मुखरित हुआ है। निराला जी के काव्य में प्रेम तत्व की भी प्रधानता है। वे मौन प्रेमी हैं। निराला जी सौन्दर्य प्रेमी कवि हैं।

उनके काव्य में सौन्दर्य के स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। उनके काव्य में देश प्रेम की भावना का भव्य रूप साकार हुआ है। उन्होंने देशवासियों में चेतना और जागृति को जन्म देने के लिए अपने देश के प्राचीन वैभव का चित्रण किया है। उनकी 'भारती वन्दना', 'जागो फिर एक बार', 'तुलसीदास' आदि कविताओं में देश प्रेम की भावना प्रकट हुई है। उनके काव्य में सामाजिक चेतना का स्वर भी मुखरित हुआ है। निराला जी ने सर्वत्र प्रकृति पर चेतना का आरोप किया किया है। निराला जी के काव्य में रहस्यवादी, छायावादी और प्रगतिवादी भावनाओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। निराला जी का कलापक्ष भी भावपक्ष की भाँति बहुत पुष्ट है। उनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शाब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है। कोमल कल्पना के अनुरूप उनकी भाषा की पदावली भी कोमलकान्त हैं निराला जी की भाषा में जहाँ दर्शन, चिन्तन अथवा विचार–तत्व की प्रधानता है, जहाँ उनकी भावना क्लिष्ट हो गई है। निराला जी ने अपने काव्य में गीति शैली को मुख्य रूप से अपनाया है।

उनकी शैली में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रात्मकता और गीतात्मकता जैसे गुण विद्यमान हैं। छन्द के क्षेत्र में निराला जी ने नवीनता का परिचय दिया हैं उन्होंने अपने काव्य में प्रायः मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। साथ ही उर्दू और अंग्रेजी के छन्दों का भी प्रयोग आवश्यकता के अनुसार किया हैं उन्होंने अलंकारों का प्रयोग चमत्कार–प्रदर्शन के लिए नहीं किया है। उनके काव्य में अलंकार साधन मात्र हैं। इस प्रकार निराला जी का काव्य जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों से अनुप्राणित है। वे एक युगान्तकारी कलाकार हैं। उनके भाव, भाषा, शैली, छन्द आदि सभी हिन्दी–कविता में नवीनतम स्वच्छन्दता की गाथा गा रहे हैं। वे नवीनता के सम्राट हैं। उनकी कविता में छायावादी और प्रगतिवादी दोनों युगों की विचारधाराओं का सुंदर समन्वय है। श्रृंगार, रहस्यवाद, छायावाद, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति–वर्णन के अतिरिक्त शोषण और वर्ग–भेद के विरूद्ध शोषितों एवं दीन–हीन जन के प्रति सहानुभूति तथा पाखण्ड और प्रदर्शन के प्रति व्यंग्य उनके काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। वास्तव में निराला जी सभी दृष्टियों से निराले हैं। हिन्दी–साहित्य में इस महाकवि का महत्व अक्षुण्ण है।

नोट्स

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र०1. निराला काव्य में किन–किन वादों या विचारधाराओं का समावेश किया है?

प्र०2. निराला जी ने किन दो पत्रों का सम्पादन किया है?

प्र०3. निराला जी की किस कविता ने हिन्दी काव्य–जगत में नवीन क्रांति उत्पन्न कर दी?

प्र०4. साहित्य जगत में निराला को किस उपाधि से सम्मानित किया जाता है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. निराला की काव्य संवेदना के मुख्य आयाम क्या हैं?

प्र०2. निराला का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए?

प्र०3. निराला के काव्य में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना पर आठ पंक्तियाँ लिखिए?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. "निरालाजी के व्यक्तित्व का निरालापन उनकी काव्य–रचनाओं में पूर्णतः चरितार्थ होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

प्र०2. निराला जी का जीवन परिचय देते हुए उनकी प्रमुख काव्यकृतियों पर प्रकाश डालिए।

प्र०3. निराला की काव्यभाषा में शब्दावली का क्या स्वरूप है, विस्तारपूर्वक लिखिए।

खंड
4
'अज्ञेय'

पाठ का प्रारूप

4.1 प्रस्तावना
4.2 जीवन परिचय
4.3 रचनाकार व्यक्तित्व
4.4 रचनाएँ
- ❑ ***अति लघु उत्तरीय प्रश्न***
- ❑ **लघु उत्तरीय प्रश्न**
- ❑ **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास का एक अविस्मरणीय नाम है– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। इस नाम का कितना ही विरोध कीजिए, यह नाम भूलने के विरूद्ध है। इस नाम ने विरोधों से शक्ति पाई है और उस शक्ति का उपयोग अपनी विद्रोही, प्रयोग–विश्वासी सर्जनात्मकता में किया है। इस सर्जनात्मकता से उनकी अपनी सिद्धान्त दृष्टि का ऐसा अन्यान्याश्रित संबंध है कि रक्त और त्वचा की तरह उन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य–भाषा, संस्कृति–परंपरा, इतिहास, मिथक, संस्कृति, आधुनिकता, विषय–वस्तु, तकनीक, छंद–लय चेतना में पारंपरिक अवधारणाओं का मूर्ति भजन उनका स्वभाव था। रूढ़ि–लीकों को तोड़ने में वे ऐसे आनंद का अनुभव करते थे कि वह आनंद सृजन के श्रेष्ठतम शिखरों का स्पर्श करने में अपने 'आत्म' की उपलब्धि पाता है। अपनी सर्जनात्मकता में उन्होंने हर बार एक नए मोड़ को जन्म दिया– चाहे वह 'अरी ओ करूणा प्रभामय' जैसी काव्य–कृति हो या 'शेखर'– एकजीवनी जैसा उपन्यास या 'त्रिशंकु' जेसा निबंध–संग्रह या 'अरे यायावर रहेगा याद' जैसा यात्रावृत्त। वे कहते भी रहे हैं कि शाब्द में मेरी समाई नहीं होगी। मैं सन्नाटे का छंद हूँ। इस छंद की लय में निर्बाध गति से जीवन प्रवाहित होता है। इस रस प्रसिद्ध रचनाकार में लोक, विद्या और प्रकीर्ण–तीनों काव्य हेतुओं तीनों प्रेरणाओं की संश्लिष्टता ही रंग लाती रही है। उनको यह कला ज्ञात है कि पुरानी विषय–वस्तु को नई संवेदना में कैसे निरूपित किया जा सकता है। अज्ञेय नए साहित्यिक विवाद उठाते भी हैं और उन विवादों पर सोचने, बहस करने पर अपने जागरूक पाठक को विवश भी करते हैं। अज्ञेय के सर्जन में ऐसा कुछ है कि हम

उसे नकार नहीं सकते।

अज्ञेय को नकारने का अर्थ है– नए सोच को अस्वीकार करना। अज्ञेय का स्वदेश 'अग्रदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम' (1946) जेसे काव्य–संग्रहों में अपनी आँखे खोलकर जीवन–जगत को देखता है और रचना है उसमें छायावादी मनोभूमि का पूरा कब्जा है। सत्याग्रह युग का अज्ञेय 'हरी घास पर क्षणभर' (1949) रमती है और रोमांटिक मनोभूमि से मुक्ति पाकर 'बावरा अहेरी' (1954) बन जाता है। आगे का पूरा रचना–संसार एंटी रोमांटिक मनोभूमि का सर्जनात्मक विस्तार है। राहों के अन्वेषी का अर्थ समर्थ 'इन्द्रधनुष रोदे हुए में', 'अरी ओ करूणा प्रभामय' और 'आँगन के चार द्वार' की अगवानी करता मिलता है। तुलसी–कबीर–निराला और प्रसाद की तरह 'देश काल के रार से बिधकर' अश्रेय का कवि जागता है। जागता और सोचता है 'कितनी नावों में कितनी बार'। अनंत सुखः दुखों का साक्षात्कार। निरंतर जटिल और कठिन होती जीवन यात्राओं के अनंत की स्थिति–परिस्थिति से परिवेश से कविता निचोड़ने का अरमान अँगडाई लेता मिलता है। 'सुनहरे शैवाल' की जापानी छाया–कवियाँ सर्जनात्मकता में कौंध–कौंध जाती हैं। गगन में घिरते मेघों से सुधियों का बरसना कभी कवि मन को चातक बना देता है, कभी हिय हारिल को टीसों से भर देता है।

4.2 जीवन परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम है– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। श्री हीरानंद वात्स्यायन उनके पिता का नाम है। इस रचनाकार को जेल यात्राओं के दौरान गुप्त नाम से लिखने के लिए 'अज्ञेय' नाम जैनेन्द्र कुमार का दिया हुआ है, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जीवन भर वे "अज्ञेय" नाम से ही सृजन कार्य में प्रवृत्त रहे। पिता पुरातत्व विभाग में खुदाई–शिविरों में अधिकारी थे। अज्ञेय का जन्म कसया (जिला देवरिया) के एक खुदाई शिविर में 7 मार्च 1911 को हुआ। कसया (कुशी नगर) का संबंध गौतम बुद्ध के निर्वाण स्थान से भी लिया जाता है। अज्ञेय ने बौद्ध धर्म की शिक्षा तो न ली पर बुद्ध ने अज्ञेय को भीतर से प्रभावित किया। वे जीवन–भर एक जगह टिककर न रहे। यायावर बने रहे और आत्मान्वेषण, जिज्ञासा तथा आत्म–दान के प्रति खुले मन से झुके रहे। माँ से अधिक पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव ग्रहण किया। बचपन से ही अन्तर्मुखी और सच बोलने के कारण उनका घरेलू नाम 'सच्चा' रखा गया।

उन्हें घर पर पुराने ढंग से शिक्षा–दीक्षा भी दी गई। उन्होंने स्वयं कहा है–"एक तो मेरी शिक्षा–दीक्षा भी पुराने ढंग से आरम्भ हुई थी, जिसमें पटिया और लेखनी का काम भी होता था, लेकिन पुस्तकों का विशेष प्रगोग नहीं होता था। पुस्तक का काम स्मृति ही देती थी। यों घर में पुस्तकें बहुत थीं, लेकिन उन किशोर वर्षों में मेरा काम श्रुति परंपरा से ही चल जाता था। पिता जी भी जब घर पर होते थे तो अक्सर संस्कृत श्लोकों का स्वरपाठ करते थे और उनकी अनुपस्थिति में बड़ी बहन प्रायः हिन्दी के काव्य–ग्रन्थ या तो सस्वर पढा करती थीं या हम भाईयों को बिठाकर सुनाया करती थीं।" अज्ञेय ने गायत्री मंत्र अष्टाध्यायी कालिदास के सृजन के साथ–साथ अंग्रेजी की मौखिक शिक्षा ली। "और अक्षर ज्ञान से पहले ही मैं दो–ढाई सौ अंग्रेजी शब्द सीखकर वह भाषा वैसे बोलने लगा था जिसे फर्र–फर्र अंग्रेजी कहते हैं। अंग्रेजी में ही कुछ हल्की कविताएँ और तुगबन्दियाँ रट ली थीं।" बचपन में टेनीसन पढ़ा और भारत के स्वाधीनता के आंदोलन के प्रभाव में आए। अज्ञेय एकान्तप्रेमी, प्रकृति प्रिय और जिज्ञासु रहे। हिंदी उन्होंने काफी बाद में सीखी और इस क्षेत्र में वे मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्य–गुरू घोषित तौर पर मानते हैं। गुप्त जी के साथ श्रीध ार पाठक, हरिऔध, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं को मनोयोगपूर्वक पढ़ा। तुकों–लयों का अभ्यास किया। रवीन्द्रनाथ और जयशंकर प्रसाद, सरोजिनी नायडू और निराला को लंबे समय तक मन में समाये रहे।

अज्ञेय का बचपन पटना, लाहौर, लखनऊ, बड़ौदा, मद्रास, उटकमंड आदि कई स्थानों पर बीता। उनकी शिक्षा एक स्थान पर न हुई। श्रीनगर जममू में अंग्रेजी शिक्षा तथा नालंदा–पटना में राखाल दास के संपर्क में आकर बांग्ला पढ़ी। सन् 1925 में हाई स्कूल पंजाब से, इण्टर (साइंस) 1927 में मद्रास से, बी०एस०सी० 1929 में फोरमन कॉलेज, लाहौर से उत्तीर्ण की। एम०ए० अंग्रेजी में दाखिल लिया ही था कि क्रांतिकारियों के संपर्क में आ जाने के कारण पढ़ाई न चल सकी। पर अज्ञेय प्राचीन नवीन भारतीय साहितय तथा पश्चिमी साहित्य को डटकर पढ़ते रहे। अनेक बार यूरोप की यात्राएँ कीं। फ्रांस के कैथोलिक पादरी पियेर दानियेल के सहयोग से मसीही साधना की गहराई में प्रवेश किया। इसी बीच उन्होंने अपनी पहली पत्नी को छोड़कर कपिला वात्स्यायन से विवाह किया। कपिल जी के व्यक्तित्व ने अज्ञेय जी की ललित कलाओं का गहरा संस्कार दिया। वे एक संस्कारी रचनाकार के रूप में उभरे और उनमें विश्व दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

4.3 रचनाकार व्यक्तित्व

अज्ञेय का रचनाकार व्यक्तित्व छायावादोत्तर काल में 'आधुनिक भाव बोध' के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वे नए काव्य आंदोलनों, प्रवृत्तियों के सूत्रधार कवि, मौलिक निबंधकार, उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक, हिंदी में नवीन आलोचकनशास्त्र के निर्माता, तुलनात्मक साहित्य के प्रतिष्ठापक, काव्य–संकलनों, पत्र–पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक और सांस्कृतिक मनीषी एक साथ रहे हैं। वे किशोर अवस्था से ही काव्य–रचना एवं साहित्य रूचि की ओर प्रवृत्त रहे। उन्होंने सैनिक, किसान विशाल, भारत, साप्ताहिक 'दिनमान' नया प्रतीक एवं अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक' का सम्पादन किया। अज्ञेय जी ने जब लिखना आरम्भ किया तब प्रगतिवादी आंदोलन जोरों पर था। कविता छायावादी प्रभाव से मुक्त होकर अंतर्मुखी प्रवृत्ति छोड़ कर बाहरी जगत की ओर अग्रसर होने लगी थी। इस प्रगतिवादी काव्य का ही एक रूप प्रयोगवादी आंदोलन में प्रतिफलित हुआ। इसका प्रवर्तन 'तारक सप्तक' के उद्धार सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय ने किया। इस काव्य–संकलन में सात प्रयोगवादी कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। 'तार सप्तक' की भूमिका इस नये आंदोलन का घोषणापत्र सिद्ध हुई यह काव्य संकलन तत्कालीन काव्य परंपरा के विपरीत एक नवीन रूप में सामने आया। अज्ञेय ने अपने सूक्ष्म कलात्मक बोध, व्यापक जीवन अनुभूति और समृद्धि कल्पना शक्ति तथा सहज परंतु संकेतमयी अभिव्यंजना के द्वारा परिचित भावनाओं के नूतन और अनछुए रूपों को उजागर किया।

परम्परागत घिसी–पिटी राजनीति सुधार और क्रांति के दोहराये गये नारों के स्थान पर मानवीय और प्राकृतिक जगत के स्पन्दनों को बोल–चाल की भाषा में वार्तालाप आलंकारिकता और लाक्षणिकता के आतंक से काव्यशिल्प को मुक्त कर नवीन काव्यधारा प्रयोगवादी, काव्यधारा के नाम से जानी जाती हैं अज्ञेय जी ने मानव नियति और प्रकृतिक सौंदर्य के घिसे–पिटे वक्तव्यों और मढ़ी–मढ़ाई शैली से हटकर अपने अंतर्गत को वायीं देकर बड़े साहस का काम किया। उन्होंने समष्टि को महत्वपूर्ण अवश्य माना परंतु साथ ही व्यक्ति की महत्ता और निजता को अखंडित रखा। व्यक्ति मन की गरिमा को उन्होंने फिर से स्थापित किया और उसके विकास को अनदेखा करने से जो गंभीर संकट उत्पन्न होता जा रहा था उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। कवि, कथाकार, निबंधकार, समीक्षक, घुमक्कड़, गंभीर अध्येयता होने के कारण अज्ञेय के बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं से प्राप्त होती है। उनका विचार है कि बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति ही मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं है अपितु उसके अन्तःकरण का विकास और समृद्धि भी उतनी ही आवश्यक है। नए सृजन की लगभाग सभी नवीन विधाओं पर उनके विचारो के रंग और रूप की अमिट छाप है। वे बुद्ध और जैन दर्शन, वैष्णव चिंता परम्परा, मानवेन्द्र राम

के रेडिकल ह्यूमेनिज्म परम्परा विरोधी, क्रांतिकारी के रूप में भी चर्चित रहे हैं। अज्ञेय साम्यवादी विचारधारा से सहमत नहीं रहे, उन्होंने भारतीय चिंतन के लोकतन्त्रवादी मूल्यों का समर्थन किया। कहना न होगा कि अज्ञेय उन अविरल रचनाकारों में से हैं, जिनका व्यक्तित्व कला–सौंदर्य के नवीन निर्माता और नयी राहों के अन्वेषी दोनों ही प्रतिमानों पर खरा उतरा है। वे एक ओर चिंतनशील अंतदृष्टि के रचनाकार हैं, दूसरी ओर दृष्टि सम्पन्न आलोचक।

सम्पादन, प्रकाशन, प्रसारण, गोष्ठी, आयोजन आदि सभी कोणों से अज्ञेय की दृष्टि और नसए बोध, के विकास की दशा का ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अज्ञेय के प्रखर आौर चिंतनशील, प्रयोगशहील और संस्कारी, विद्रोही व्यक्तित्व ने नवीन सर्जनात्मकता को आच्छादित नहीं किया–बल्कि उसके विकसित होने में पूरा योगदान दिया है। उन्होंने अपने छात्र जीवन से ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम में मानव–मुक्ति के लिए सक्रिय साझेदारी की। सन् 1927 में भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद के साथ सशस्त्र क्रांति का आह्वान किया। वे "हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना" के सदस्य बने। अंग्रेजी साम्राज्यवाद को खदेड़ने के लिए उन्होंने लाहौर से दिल्ली तक बम ढोए। बम बनाने वाली फैक्ट्री के अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार रहे और 1930 ई० में गिरफ्तार हुए। कई वर्षों तक जेल की यातना भरी जिंदगी व्यतीत की। 'चिंता', 'शेखर एक जीवनी', 'कोठी की बात' जैसी कृतियों की रचना जेल में ही की। "दुःख सभी को मांजता है"– यह आत्म–ज्ञान का दर्शन उन्होंने अनुभव से प्राप्त किया। जेल से छूटकर किसान आंदोलनों में काम किया। देश–विदेश की खाक छानी तथा 'सैनिक', 'विशाल भारत' जेसे पत्रों के सम्पादन विभागों में नौकरी की। भारत के कला तीर्थों की बार–बार यात्राएँ कीं। 1955 में पश्चिमी यूरोप की यात्रा की तथा कवियों, चित्रकारों, दार्शनिकों के व्यक्तिगत संपर्क में आए। जापान–फिलीपीन की यात्रा पर निकले। फ्रांस गए तथा दार्शनिक पियेर से मठ में दीक्षा ली। 1961 में कैलिफोर्निया में भारतीय साहित्य–संस्कृति पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। अमेरिका घूमे, ऑस्ट्रेलिया के सेमिनारों में भाग लिया। कुछ समय जोधपुर विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा–विभाग के निदेशक रहे फ़िर आकाशवाणी में रहे। 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक रहे और सब छोड़कर साहित्य सेवा को समर्पित हो गए। छायवादी भावावेग और आसक्ति अनेक व्यक्तित्व का गुण कभी नहीं रहा, न जीवन में, न रचना में।

4.4 रचनाएँ

अज्ञेय की रचनाओं का छायवाद युग से ही आरम्भ हो जाता है। उनकी प्रकाशित रचनाओं का क्रम इस प्रकार है– काव्य संकलन–भग्नदूत (1933), चिंता (1942), इत्यलम् (1943), हरी घास पर क्षणभर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करूणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वारा (1961), सुनहरे शैवाल (1965), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में 1946), कितनी नावों में कितनी बार (1966), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1968), सागर मुद्रा (1969), पहले मैं सन्नाय बुनता हूँ (1973), ऐसा कहीं कोई घर आपने देखा है? आदि। अज्ञेय की संपूर्ण कविताओं का संकलन दो खण्डों में 'सदानीय' नाम से प्रकाशित है।

सम्पादित ग्रन्थ

तार सप्तक (1973 ई०), दूसरा सप्तक (1951 ई०), तीसरा सप्तक (1959 ई०), चौथा सप्तक (1969 ई०), पुष्करिणी भाग–2, रूपाम्बरा (1960), आज का भारतीय साहित्य, नए एकांकी (1952), नेहरू अभिनंदन ग्रंथ संयुक्त रूप से (1949), हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ (1952)।

अनुदित

श्रीकान्त (शरत्चन्द्र, अंग्रेजी में 1944), द रेजिग्नेशन (जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास "त्यागपत्र" का अंग्रेजी में 1946), नीलाम्बरा (अंग्रेजी में)।

भ्रमण वृतान्त

अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूँद सहसा उछली (1961)।

कहानियाँ

विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951), ये तेरे प्रतिरूप (1961)।

उपन्यास

शेखर एक जीवनी भाग–1 (1941), भाग–2 (1944), नदी के द्वीप (1952), अपने–अपने अजनबी (1961), बारह खम्भा (सम्पादित)।

निबंध–संग्रह

त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिंदी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, भवन्ती, अन्तरा, लिखि कागद कोरि, जोग लिखी, आलवाल अद्यतन, संवत्सर, कहां है द्वारका, आत्मपरक, सर्जना और संदर्भ आदि।

काव्यगत विशेषताएँ

अज्ञेय जी बौद्धिक भावभूमि के कवि थे, परंतु उनकी रचनाओं में भावनाओं का सजीव और स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है। उनका अनुभूति पक्ष उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। अज्ञेय जी के काव्य में विविध रसों का परिपाक हुआ है, परन्तु श्रृंगार, करूण, वीर, शान्त आदि रसों का विशेष रूप से निरूपण किया है। उन्होंने अपने काव्य में प्रेम–तत्व को महत्ता प्रदान की है। उनके काव्य में प्रेम का प्रकटन कहीं तो स्त्री के माध्यम से हुआ है तो कहीं पुरूष के माध्यम से हुआ है। अज्ञेय जी के काव्य में मानवतावादी भावना के भी दर्शन होते हैं। उनकी यह भावना 'हिरोशिमा' कविता में विशेष रूप से देखने को मिलती है। अज्ञेय जी के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में चित्रित हुई है। जहाँ का आलम्बन रूप है, वहीं उद्दीपन रूप भी। प्रकृति का मानवीकरण भी हुआ है। प्रकृति उनकी रहस्यवादी अनुभूतियों के प्रकटन का साधन भी बनी है। अज्ञेय जी के काव्य में रहस्यवादी भावना की प्रधानता है। उन्होंने अनेक विम्बों और प्रतीकों के माध्यम से रहस्यवाद को प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने रहस्यवाद में विराट सत्ता के प्रति अपना सर्वस्व अर्पित किया हैं उनके काव्य में छायवाद के भी दर्शन होते हैं। उसी का परिणाम है कि उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया है। अज्ञेय जी के काव्य में प्रयोगवाद के साथ प्रगतिवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। उसी का परिणाम है कि उन्होंने शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, यथार्तता और शोषक संस्कृति का विरोध किया है। असंस्कृत या विकसित मानस का व्यक्ति भौतिक सम्पन्नता से मुक्त होने पर भी अपने लिये तथा समाज के लिए समस्या बना ही रहता है। इसलिए केवल शरीर की आवश्यकता की पूर्ति पर्याप्त नहीं है। अज्ञेय जी निरन्तर व्यक्ति के मन के विकास की यात्रा को महत्वपूर्ण मानकर चलते रहे हैं।

अज्ञेय जी का कलापक्ष बहुत सबल और प्रभावशाली है। उनकी भाषा शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित और संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। उनकी भाषा में विविधता दिखाई देती है। अज्ञेय जी ने मुक्तक शैली में अपने काव्य की रचना की है। उनकी शैली में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेय जी के काव्य में प्रकृति और पुरातन उपकरणों को लेकर बड़े सुंदर और सजीव बिम्बों की योजना की है। उन्होंने अपने काव्य में अप्रस्तुत विधान और प्रतीक विधान को भी स्थान दिया है। उनके प्रतीक न्यूनता और मौलिकता के द्योतक हैं। अज्ञेय जी ने आरम्भ में मात्रिक और वर्णिक छन्दों का अ पने काव्य में प्रयोग किया था, परंतु बाद में उन्होंने मुक्त छंद को स्वीकार किया। अज्ञेय जी ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग साध्य रूप में नहीं अपितु साधन रूप में किया है। उनका सबसे प्रिय अलंकार उपमा है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में रूपक, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, समासोक्ति, ध्वन्यार्थ व्यंजना आदि अलंकारों का भी सार्थक प्रयोग मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञेय जी प्रतिभा सम्पन्न एवं समर्थ कवि हैं। उन्होंने हिन्दी कविता का नव संस्कार किया। उन्हें हिंदी साहित्य जगत में प्रयोगवादी कविता का प्रवर्तक एवं 'नयी कविता' का कर्णधार माना जाता है। शिल्प के नूतन उपकरणों की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट करने वाले प्रयोगधर्मी कवि के रूप में हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा।

मूल्यांकन

अज्ञेय में नए रहस्यवादी रूझान की प्रवृत्ति मिलती है। अपने एक लेख "चेतना के संस्कार" में वे गाँधी विचारदर्शन की भाँति सोचते मिलते हैं। उन्हें लगता है कि भौतिकता–यांत्रिकता के अतिशय विस्तार ने मानव की आंतरिक और आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास किया है। मानव विकास सोद्देशीय होना चाहिए और यह सोद्देश्यता परमपिता, ब्रह्म या अनादि चेतना को किसी रूप में माने बिना सिद्ध नहीं होती। हिंदी की आधुनिक कविता में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद और निराला के काव्य प्रयोगों ने प्रगति का एक नया पथ निर्मित किया है और नवीन काव्य–राहों की खोज की। इसी परम्परा को अज्ञेय विस्तार एवं गहराई देते हैं। प्रयोगों की इस आंतरिक निष्ठा के कारण उन्हें "प्रयोगवादी काव्य–प्रवृत्ति" का प्रवर्तक कवि माना जाता है। प्रयोग, कविता में नयी दिशा की खोज है।

अज्ञेय जी के काव्य में आधुनिकता का अर्थ है– नवीनता और मौलिकता, दृष्टि से मध्ययुगीन श्रृद्धावादी संस्कारों से मुक्ति तथा नवीन संवेदना की बौद्धिक आग के प्रति लगाव। हिंदी की आधुनिक काव्य धारा में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, निराला जी की दिशा–दृष्टि को सांस्कृतिक संवेदन और संस्कार के साथ रचनात्मकता ममें ढालने वालों में अज्ञेय का नाम स्मरणीय है। वे हमारी परम्परा की आधुनिकता हैं, तथा काव्य भाषा की रचनात्मक सम्भावनाओं को भारतीयता के मूल स्त्रोतों से जोड़ने वाले रचनाकार। वे वस्तु और शिल्प के नए से नए प्रयोगों से हिन्दी कविता को समर्थ और सक्षम बनाते हैं। नवीन प्रवृत्तियों, नवीन आंदोलनों की अगुवाई करने के कापरण उनके सृजन का ऐतिहासिक महत्व है। कहना न होगा कि मुक्तिबोध बाहर से नयी कविता को और अज्ञेय भीतर से नई कविता को नया सौन्दर्य बोध देते हैं। मार्क्सवादी मुक्तिबोध और मनोविश्लेषणवादी अज्ञेय दोनों का काव्य–व्यक्तित्व मिलकर ही नयी कविता को भरा पूरा बनाता है। अज्ञेय को व्यक्तिवादी–क्षणवादी, भोगवादी कहकर अभिजात्यवादी भी सिद्ध किया गया है, पर इन आरोपों से वे बाहर के कवि हैं। छायावादोत्तर कवित में अज्ञेय का काव्य चिंतन एक महत्वपूणर्ज उपलब्धि है और काव्य सृजन नवीन भाव–बोध की सशक्त अभिव्यक्ति है।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. अज्ञेय जी को किस काव्यकृति के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया?

प्र०2. अज्ञेय जी किस विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा अनुशीलन विभाग के निदेशक रहे?

प्र०3. अज्ञेय जी का पूरा नाम क्या है?

नोटस

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. अज्ञेय की अनुभूति पर किन विचार–दृष्टियों का प्रभाव है? सात–आठ पंक्तियों में विचार कीजिए।

प्र०2. "अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद आध्यात्मिक नहीं है।" इस कथन पर अपने विचार दीजिए।

प्र०3. अज्ञेय के जीवन–दर्शन पर सात वाक्यों में विचार कीजिए?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. हिन्दी काव्य साहित्य में अज्ञेय के योगदान पर विस्तार से उल्लेख कीजिए।

प्र०2. *"अज्ञेय जी ने हिन्दी प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रवर्तन किया था।" उनकी रचनाओं के आधार पर* इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

प्र०3. अज्ञेय जी का जीवन–परिचय निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर लिखिए–

(1) जन्मकाल, समय, जन्म–स्थान, माँ–बाप, शिक्षा।

(2) कवि के समय की साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ।

खंड

5
रामधारी सिंह 'दिनकर

पाठ का प्रारूप

5.1 प्रस्तावना
5.2 जीवन परिचय
5.3 साहित्यिक अवदान
5.4 यौवन की हुंकार
5.5 राष्ट्रीय चेतना
5.6 विषमताओं का चित्रण
5.7 आक्रमण के समय राष्ट्र चेतावनी
5.8 काव्यगत विशेषताएँ
5.9 कलापक्षीय विशेषताएँ
5.10 मूल्यांकन
❑ अति लघु उत्तरीय प्रश्न
❑ लघु उत्तरीय प्रश्न
❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

विद्रोह विस्फोट तथा ओज के साथ–साथ सौन्दर्य और व्यंग्य प्रधान श्रृंगार कवि के रूप में दिनकर जी का व्यक्तित्व निराले विरोधाभास को लेकर उपस्थित हुआ। दिनकर की कला में सपनों का सौंदर्य नहीं है, अपितु जीवन के संघर्षों का सौंदर्य है। उनकी कविता आधुनिक युग का श्रेष्ठ दर्पण है। दिनकर उन्मुक्त स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें कला का साज–श्रृंगार करने की प्रवृत्ति नहीं थी, वरन अनुभूतिजनित स्वभाविक तीव्रता को व्यक्त करना ही उन्हें प्रिय था। भारतीय समाज एवं देश की तत्कालीन दशा का यथावत चित्रण और कथाओं में ओजगुण की प्रधानता; उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वे मुख्यतः जनचेतना के गायक और एक क्रान्तिकारी कवि थे। राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से; जो कविताएँ उन्होंने लिखीं वे भौतिकता व अनैतिकता के पथ पर जा रहे भारतीयों के प्रति रोष उत्पन्न करती हैं और हमारे सुप्त मन को झकझोर कर रख देती हैं।

दिनकर जी का व्यक्तित्व और कृतित्व, दोनों ही, संघर्षों के बीच विकसित हुआ कहा जा सकता है। चिन्तन की प्रौढ़ता भी दिनकर की कविताओं में मिलती है। उनकी रचनाओं में अध्ययन की व्यापकता, चिंतन की गहराई और विचारों की जो परिपक्वता मिलती है,वह हिंदी के इने–गिने कवियों में ही दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही दिनकर का आलोचक रूप भी अत्यंत प्रत्ययकारी, प्रखर और तत्वान्वेषी है। उनकी आलोचनाएँ साहित्य का मर्म उजागर कर देती हैं।

दिनकर जी सच्चे अर्थों में हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं। उन्होंने अपनी काव्य–कला रूपी ज्योति से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को आलोकित कर दिया। जिस प्रकार दिनकर जन जीवन में जागरण और कर्म का संदेश देता है, उसी प्रकार कविवर 'दिनकर' ने भी अपनी काव्य–कृति रूपी किरणों से हिन्दी को राष्ट्रीय जागरण और कर्म का संदेश प्रदान किया है।

5.2 जीवन परिचय

राष्ट्रीय भावनाओं के अमर गायम 'रामधारी सिंह दिनकर' का जन्म बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के अन्तर्गत सिमरिया नामक ग्राम में 23 सितम्बर, सन् 1908 ई० को एक साधारण किसान परिवार में हुआ था।

दिनकर जी का जन्म फसरी संवत 1316 के आश्विन महीने में नवरात्र के भीतर बुधवार की रात्रि में हुआ था, जिस आधार पर गणकों ने उनकी जन्मतिथि 30 सितम्बर 1908 निर्धारित की थी और बहुत दिनों तक वही मान्य भी रही। लेकिन पटना के प्रसिद्ध ज्योतिष रामलोचन पाण्डेय ने दिनकर जी की पूजनीया माताजी से साक्षात्कार करके दिनकर जी की जन्मतिथि 23 सितम्बर, 1908 की और अब अंतिम तौर पर यहीं तिथि मान्य है।

जिस साधारण कृषक परिवार में दिनकर जी पैदा हुए वह आज भी सिमरिया में मौजूद है। अभी भी वहाँ पर बाँस के छप्पर से छाया हुआ ईंट का खपरैल मकान खड़ा है, जिसमें दिनकर का जन्म हुआ था। दिनकर जी के पिता बाबू रवि सिंह एक साधारण हैसियत के ठेठ किसान थे। वे नित्य मानस का पाठ करते थे, अर्थ लगा–लगाकर और वास–पड़ोस के लोगों को सुनाते थे। किसी को कुछ देते समय वे बहुधा कहा करते थे– देना–देना, नहीं देना। दिनकर जी के पितामह श्री शंकर राय भी थोड़ा बहुत पढ़ना–लिखना जानते थे। दिनकर जी के वंश में कई पुश्त पहले भी एक कवि हो चुके थे जिनका नाम था 'भैरवराय'। भैरवराय रचित एक पद्य भी दिनकर जी के अग्रज सुनाते हैं, जो इस प्रकार है:

"भैरव कवि मन भये उदासा,
अइ नगरी के नहिं विश्वाशा।"

दिनकर जी भी जब गाँव की पाठशाला के छात्र थे प्रायः हर रोज डेढ़–दो घंटे रामायण का पाठ किया करते थे। दिनकर जी जब हाईस्कूल के विद्यार्थी थे, तब वे संस्कृत में गीता महाभारत का पाठ भी धड़ाधड़ करने लग गए थे। वे दिन थे दिनकर जी के बचपन तथा उनके कवि जीवन के उषा काल के। इसी गाँव की 'रेणुका' पर दिनकर जी ने अपने पाँव के असंख्य निशान छोड़े थे। यहीं पर उन्होंने कितने ही अभावग्रस्त 'रेती के फूलों' को कुम्हलाते देखा था। यहीं से उनके कवित्व ने ललकार भरी आवाज दी थी:–

"व्योम कुंजों की परी, अयि कल्पने!
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं,
पा न सकती मृत्ति उड़कर स्वप्न को
शक्ति हो तो आ बसा अलका यहीं।"

उन्होंने सन् 1933 ई० में पटना विश्वविद्यालय में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने

रामधारी सिंह 'दिनकर

नोटस

कुछ दिनों के लिए माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्य सम्भाला। इसके बाद दिनकर जी सन् 1934 में सरकारी नौकरी में आए और सब–रजिस्ट्रार बन गए। बाद में वे ब्रिटिश सरकार के युटता प्रचार विभाग में उपनिदेशक नियुक्त किए गए और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तक इसी पद पर कार्य करते रहे। कुछ समय तक इन्होंने बिहार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। रामधारी सिंह दिनकर को सन् 1952 में राज्यसभा कस सदस्य मनोनीत किया गया, जहाँ वे सन् 1962 तक रहे। कुछ समय तक दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। उसके पश्चात् वे भारत सरकार के गृह विभाग में हिन्दी सलाहकार के रूप में एक लम्बे समय तक हिन्दी के संवर्धन एवं प्रचार–प्रसार में कार्यरत रहे। दिनकर जी की साहित्यिक प्रतिभा एवं सेवा को सम्मान देते हुए राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से समानित किया। उन्हें 'साहित्य एकादमी' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। सन् 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी०लिट् की उपाधि प्रदान की। इसके पश्चात् सन् 1972 में उनके बहुचर्चित महाकाव्य 'उर्वशी' पर उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। उन्हें अपने युवा पुत्रों की मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। इस प्रकार यह कलाकार सरस्वती का अमर आराधक रहा। वह 24 अप्रैल सन् 1974 को इस नश्वर संसार से चल बसा।

5.3 साहित्यिक अवदान

रामधारी सिंह दिनकर छायवादोत्तर काल के महान कवि थे। उनकी काव्य–प्रतिभा अद्भुत थी। उनकी कविताओं में अतीत के प्रति प्रेम तथा वर्तमान युग की दयनीय दशा के प्रति असंतोष है। उनका मुख्य विषय अतीत का गौरव गान है तथा प्रगति और निर्माण के पथ पर अग्रसर होने का सन्देश देना है। वैसे दिनकर जी की अधिकांश कविताओं में देश–प्रेम की भावना जागृत है। दिनकर जी शक्ति और पौरुष के कवि हैं। उन्हें प्रगतिवादी कवियों में भी सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। दिनकर जी की काव्यात्मक प्रतिभा ने उन्हें अपार लोकप्रियता प्रदान की। उन्होंने सौन्दर्य प्रेम, राष्ट्रप्रेम, लोक–कल्याण आदि अनेक विषयों पर काव्य रचना की, किन्तु उनकी राष्ट्रीय भाव पर आधारित कविताओं ने जनमानस को अधिक प्रभावित किया।

दिनकर राष्ट्रवादी कवि हैं, जिन्होंने आजादी से पहले की अपनी कविताओं में देश को आजाद कराने का स्पष्ट आह्वान किया है। दिनकर ने कभी प्रत्यक्षतः अंग्रेजों के खिलाफ न कुछ कहा न लिखा। बस अपनी कविताओं में कभी हिमालय के जरिए तो कभी 'विपथगा' के ब्याज से सब कुछ नष्ट भ्रष्ट करने का आह्वान करते रहे। बिल्कुल ब्याज–स्तुति की शैली में। कहावत में कहें तो 'कहीं पे निगाहें कहीं पे निशाना'।

जब छायावाद अपने प्रकर्ष पर था और नए कवि पंत, प्रसाद, निराला आदि का अनुगमन कर रहे थे, दिनकर ने अपेक्षाकृत पुराने पड़ चुके 'मैथिलीशरण गुप्त' को अपना काव्य आदर्श बनाया। जन जागरण की इस विचारधारा को प्रखर बनाने का काम दिनकर जी ने किया। उनकी कविताओं में ओज है, तेज है, और अग्नि जैसा तीव्र ताप है।

5.4 यौवन की हुंकार

दिनकर जी की हुंकार में यौवन की हुंकार का समावेश है। यह कवि के राष्ट्रीय विचारों से ओत–प्रोत ऐसी रचना है, जिसमें क्रान्ति और विद्रोह की आग बरसाने वाली कविताएँ संकलित हैं।

5.5 राष्ट्रीय चेतना

दिनकर जी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का जयघोष सुनाई देता है। उसमें युग की चेतना की सबल अभिव्यक्ति हुई है। अपनी हिमालय कविता में उन्होंने भारतपुरूष को जगाने का प्रयास किया है–

'ले अँगड़ाई उठ हिले धरा, कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट! हुंकार भरे, फट जाए कुहा, भागे प्रसाद।'

5.6 विषमताओं का चित्रण

दिनकर जी ने अपने काव्य में स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की स्थिति पर भली प्रकार दृष्टिपात किया है। उन्होंने जनजीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विषमताओं का चित्रण किया है। उन्होंने उन नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है, जो दिल्ली के रेशमी नगर में रहते हैं आज़ैर अपने देशवासियों की तरफ नहीं देखते, जो फटे चिथड़े लटकाए घूमते रहते हैं। नेताओं को सम्बोधित करते हुए दिनकर जी लिखते हैं–

"सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत अँधियारा है
मखमल के परदों के बाहर फूलों के उस पार
ज्यों का त्यों खड़ा है आज भी मरघट सा संसार!"

5.7 आक्रमण के समय राष्ट्र चेतावनी

दिनकर जी ने देश की सीमाओं पर आक्रमण के समय जन–जीवन में व्याप्त आलस्य और अकर्मण्यता को दूर करने की चेतावनी दी और खेतों, कारखानों और बाजारों में तत्परता के साथ अपना कार्य रने की सलाह भी दी है। उनका मत है कि युद्ध केवल सीमाओं पर ही नहीं होता, अपितु उसके लिए सभी जगह मोर्चे खुले हुए रहते हैं–

सरहल पर ही नहीं मोरचे खुले हुए हैं
खेतों में खलिहान, बैठकों, बाजारों में
जहाँ कहीं आलस्य, वहीं दुर्भाग्य देश का।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में– "दिनकर का अधिकांश काव्य बलिदान और वीरता का अमर राग है। इसमें अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध क्रान्ति एवं विद्रोह उत्पन्न करने वाला सिंहनाद है और अकर्मण्यता एवं आलस्य की रात्रि को नष्ट करके जन–जन में कर्मण्यता, शूरता एवं पराक्रमशीलता के प्रभात को लाने वाले दिवसमणि का दिव्यलोक है।"

उन्होंने अपनी प्रखर लेखनी से सर्वप्रथम हिन्दी कविता को छायावाद को सम्मोहन से मुक्त किया और उसमें राष्ट्रवादी तथा प्रगतिशील विचारों को स्थान दिया। सत्यता यह है कि दिनकर जी आरंभ से ही लोक के प्रति समर्पित कवि रहे। नवीन चेतना और जनमानस में देश–भक्ति की लहरें उठाने वाले दिनकर जी अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी लेखनी में ऐसी शक्ति है जो धूल को भी स्पर्श करके सोना बना देती है। इस प्रकार काव्य संसार की विकास यात्रा में दिनकर जी का अपूर्व योगदान है।

कृतियाँ

दिनकर जी की काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है–

नोटस

रेणुका

यह दिनकर जी की प्रथम प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसमें कवि ने अपने युग की परिस्थितियों के विविध चित्र प्रस्तुत करते हुए, अपने हृदय में सोई हुई विद्रोह की चिंगारी का प्रथम परिचय दे दिया है।

हुंकार

यह दिनकर जी की राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह है।

रसवन्ती

यह प्रेम और श्रृंगार सम्बन्धी कविताओं का संग्रह है।

छन्दगीत

इसमें कवि के आध्यात्मिक मुकतक संग्रहीत हैं।

सामधेनी

यह सामाजिक चेतना, स्वदेश प्रेम तथा विश्व वेदना सम्बन्धी कविताओं का संकलन है।

कुरूक्षेत्र

महाभारत की कथा को आधार बनाकर शान्ति और युद्ध की समस्या पर विचार करने वाला प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है।

रश्मिस्थी

महाभारत के कर्ण के जीवन पर आधारित प्रबंध काव्य है।

उर्वशी

यह दिनकर जी का विख्यात महाकाव्य है। इसमें उर्वशी और पुरूरवा की पौराणित प्रेम कथा को कवि ने नवीन चिन्तन के साथ प्रस्तुत किया है।

परशुराम की प्रतीक्षा

सन् 1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के संबंध पर लिखी गई दिनकर जी की अति महत्वूपर्ण काव्यकृति है।

इनके अतिरिक्त दिनकर जी की 'चक्रवाल', 'धूप–छाँव', 'हारे को हरिनाम', 'नीम के पत्ते', 'नील–कुसुम',

'सीपी और शंख', 'बन्धु', 'इतिहास के आँसु', मृत्ति तिलक', 'कोयला और कवित्व' आदि अन्य काव्य कृतियाँ हैं। दिनकर जी की गद्य रचनाओं में उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' उल्लेखनीय है।

5.8 काव्यगत विशेषताएँ

दिनकर की कविता में काव्यानुभूति और अभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय है। वे क्रान्तिकारी कवि हैं। यही कारण है कि उनके विद्रोहशील व्यक्तित्व को अपने देश के पौराणिक आख्यानों में जो असंगतियाँ दिखाई दीं, उसे मिटाने के लिए उन्होनें 'कुरूक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' जेसी कथाकाव्यों की रचना की। पहली रचना कुरूक्षेत्र तो वस्तुतः कथाकाव्य नहीं, वरन् विचार काव्य है, क्योंकि उसमें हिंसा और अहिंसा की विचारध ाराओं का द्वन्द प्रस्तुत किया गया है। 'रश्मिरथी' में सूतपुत्र के रूप में प्रसिद्ध वीर कर्ण का आख्यान है। जागरित पुरूषार्थ के कवि दिनकर शान्तिप्रियता और अहिंसा की आड़ में फैलने वाली निर्वीयता और अकर्मण्यता को व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए घातक मानते हैं। उनके व्यक्तित्व का यह स्वरूप चीनी आक्रमण के समय प्रज्जवलित हो उठा था और उन्होंने 'परशुराम की प्रतीक्षा' शीर्षक रचना उपस्थित की थी।

दिनकर काव्य की विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

भावपक्षीय विषेषताएँ

दिनकर जी ने कविता को छायावाद के सम्मोहन से मुक्त किया तथा उसमें राष्ट्रवादी और प्रगतिशील विचारों को स्थान दिया। दिनकर जी के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

राष्ट्रीयता का स्वर

दिनकर जी राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। दिनकर जी का मत थां कि राष्ट्रीयता हमारा सबसे बड़ा और महान धर्म है और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या। आपकी कृतियाँ त्याग, बलिदान और राष्ट्रप्रेम की भावना से परिपूर्ण हैं। हिमालय के प्रति आह्वान करता हुआ कवि का एक स्वर प्रस्तुत है–

"ले अँगड़ाई हिल उठे धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद।
तू शैलराट! हुंकार भरे,
फट जाए कुहा, भागे प्रमाद।"

दिनकर जी ने भारत के कण–कण को जगाने का प्रयास किया है। हिमालय को जगाने के माध्यम से भारतीयों को जगाने का यह प्रयास कितना सार्थक बन पड़ा है–

"ओ मौन तपस्यालीन यती,
पल भर कर तू दृगोन्मेष।
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल,
है तड़प रहा पद–पद स्वदेश।"

रामधारी सिंह 'दिनकर

नोटस

प्रगतिवाद

छायावाद के बाद का सबसे सबल साहित्यिक आंदोलन 'प्रगतिवादी' विचारधारा के दर्शन होते हैं। उन्होंने उजड़ते खलिहानों, जर्जरकाय कृषकों और शोषित मजदूरों का मार्मिक चित्र अंकित किया है। वर्तमान युग की दयनीय दशा पर कवि ने तीव्र आक्रोश प्रकट करते हुए क्रान्ति का शंखनाद किया है–

"सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धर कर हला,
तब दूँगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगाजल।"

दिनकर जी की *'हिमालय', 'ताण्डव', 'बोधिसत्व', 'कस्मै दैवाय', 'पाटलीपुत्र की गंगा'* आदि सभी रचनाएँ प्रगतिवादी विचारधारा पर ही आधारित हैं।

प्रेम और सौन्दर्य

कवि ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय चेतना उनके भीतर से नहीं जन्मी, वरन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। सच तो यह है दिनकर जी सुकुमार कल्पनाओं के कवि हैं। कोमलता और सुकुमारता से उनकी कोई काव्य भूमि अछूती नहीं है। उनके द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'रसवन्ती' की कविताएँ प्रेम और सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं।

उनका उर्वशी काव्य तो प्रेम और सौन्दर्य का खजाना है। सुकुमार कल्पना का यह कवि 'उर्वशी' की रचना से पूर्व अपने सहज भावों पर रोक लगाता रहा है, किन्तु उर्वशी उसके हृदय का वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर सकी है।

रस निरूपण

दिनकर जी को प्रायः वीर रस का कवि माना जाता रहा है। वास्तव में ओज के क्षेत्र में दिनकर जी ने महानतम कार्य किए हैं। किन्तु उनके काव्य में श्रृंगार और करूण रस को भी उतना ही महत्व प्राप्त है।

5.9 कलापक्षीय विशेषताएँ

भावपक्षीय विशेषताओं के साथ ही दिनकर जी का कलापक्ष भी बड़ा सबल और प्रौढ़ है। उनके काव्य में कलापक्ष की निम्नलिखित विशेषताएँ दर्शनीय हैं–

परिष्कृत खड़ीबोली

दिनकर जी भाषा के मर्मज्ञ हैं। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित है। उनकी भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है। वह बोलचाल की भाषा से थोड़ी अलग है। छायावादी कवियों के समान उनकी भाषा कोहरे में डूबी हुई नहीं है। वरन् पूरी तरह स्पष्ट है और उसमें भावों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। उसमें चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता और मनोहारिता है।

अलंकार योजना

दिनकर जी के काव्य में अलंकार बाहर से थोपे हुए नहीं है। अनुभूति को साकार रूप देने के लिए वे बिना किसी प्रयास के प्रयुकत हुए हैं। उन्होंने मुख्य रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा अलंकार का एक नया रूप इन पंक्तियों में प्रस्तुत है–

"लदी हुई कलियों से मादक टहनी एक नरम सी।
यौवन की वनिता सी भोली गुमसुम खड़ी शरम सी।"

नोटस

छन्द–योजना

दिनकर जी के काव्य में विविध प्रकार के छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ में उन्होंने मुक्त छन्द को स्वीकार नहीं किया, किन्तु समय के साथ–साथ उनकी विचारधारा में परिवर्तन आया और वे छन्द बन्धन से मुक्त कविता को ही वास्तविक काव्य वंदना करने लगे।

दिनकर जी के काव्यशिल्प के संबंध में डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' की ये पंक्तियाँ विशेष रूप से दृष्टव्य हैं– "दिनकर के सम्पूर्ण कार्यों पर दृष्टि डालने के उपरान्त यह स्वीकार करना पड़ता है कि भाषा के व्यक्तित्व के साथ–साथ विविध छन्दों की राग माधुरी उनकी कविताओं में पूरी–पूरी मिलती है। उनकी व्यंजनामयी सरल वाणी में राष्ट्र का स्वर गूँजता है। उनके भाव, भाषा और छन्दों में स्वदेश की मिट्टी की वह गन्ध गूँजती है जो सच्चे प्रगतिवाद को नवचेतना प्रदान करती है।"

5.10 मूल्यांकन

दिनकर जी माँ भारती के अमर गायक हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' की गणना आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती हैं हिन्दी काव्य जगत में क्रान्ति, ओज और प्रेम के सर्जक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय हैं विशेष रूप से राष्ट्रीय चेतना एवं जागृति उत्पन्न करने वाले कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। उनकी भाषा में ओज और भावों में क्रान्ति की ज्वाला है। उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी वाणी से सोती हुई भारतीय जनता में चेतना का संचार किया। उनकी कविता में क्रान्ति, ओज और प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित है। अतीत के चित्रों को अपनी भावना के अनुरूप अलंकृत करने की दृष्टि से, कोई भी उनकी समता नहीं कर पाया है। दिनकर विचार और व्यक्तित्व में निहित पौरूष तथा माधुर्य भाव को सच्चाई के साथ अपने काव्य में साकार करता है। उसमें धर्म, दर्शन, राष्ट्रीयता, मानवता, मनोविज्ञान, माधुर्य और प्रगतिशीलता का अद्भुत सामंजस्य है। दिनकर ने कभी अपनी भावनाओं से समझौता नहीं किया। समीक्ष्य पुस्तक में संकलित संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ व्यक्तिगत होते हुए भी अधिकांश रूप में कर्तव्यगत हैं। कसौटी राष्ट्रीय उत्कर्ष हैं चिंतन की प्रौढ़ता भी दिनकर की कविताओं में मिलती है। उनकी रचनाओं में अध्ययन की व्यापकता, चिंतन की गहराई और विचारों की जो परिपक्वता मिलती है, हिंदी के इने–गिने कवियों में में ही दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही दिनकर का आलोचक रूप भी अत्यंत प्रत्ययकारी, प्रखर और तत्वान्वेषी है।

दिनकर जी भारतीय संस्कृति के रक्षक, राष्ट्रीय प्रहरी, क्रान्तिकारी चिन्तक, गरीबों के मसीहा और अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि कवि थे। उनका हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में विशिष्ट स्थान है।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. छायावादोत्तर काल के 'कुरूक्षेत्र' काव्य के रचयिता का नाम लिखिए।

प्र०2. दिनकर जी ने अपने काव्य में कौन–सी प्रमुख शैली का प्रयोग किया है?

प्र०3. दिनकर जी के काव्य में किस रस की प्रधानता है?

नोटस

लघुउत्तरीय प्रश्न–

प्र०1. दिनकर जी के काव्य की दो भावपक्षीय विशेषताएँ लिखिए।

प्र०2. रामधारी सिंह दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का परिचय दीजिए।

प्र०3. दिनकर जी की प्रमुख काव्यकृतियों का उल्लेख कीजिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. रामधारी सिंह 'दिनकर' का जीवन–परिचय दीजिए तथा उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

प्र०2. दिनकर जी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र०3. दिनकर जी का हिन्दी साहित्य में योगदान विस्तारपूर्वक लिखिए।

खंड
6
कालजयी – भवानी प्रसाद मिश्र

पाठ का प्रारूप

6.1 प्रस्तावना
6.2 जीवन परिचय
6.3 साहित्यिक अवदान
6.4 रचनाएँ
6.5 काव्यगत विशेषताएँ
6.6 मूल्याँकन
❑ अति लघु उत्तरीय प्रश्न
❑ लघु उत्तरीय प्रश्न
❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य जगत के उन शिल्पियों में हैं, जिन्होंनें अपनी सहजता से नया रूप, नयी दिशा और नया जीवन प्रदान किया। कवि जीवन के आरंभ से ही भवानी प्रसाद मिश्र छायावादी कविता की मूल दृष्टि और काव्य–शिल्प के मुहावरे के प्रति विद्रोही बनकर काव्य सर्जना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी कविता की स्वतंत्र राह स्वयं निर्मित की और किसी भी तरह की देशी–विदेशी काव्य प्रवृत्तियों के अनुकरण से दूर रहे। उनके कवि मन का निर्माण वाल्मीकि, कालिदास, कबीर और सूर, भारतेन्दू और पं० रामनरेश त्रिपाठी की स्वछन्दता प्रिय दृष्टि ने किया। राष्ट्रीय जागरण ने उनकी सर्जनात्मकता में देश प्रेम के संस्कारों को बलिष्ठ बनाया और मध्य प्रदेश की प्रकृति ने उनमें अनुराग पैदा किया। वे एक प्रकार से नर्मदा की तप–त्याग–धारा के परशुराम तेज वाले सन्त कवि हैं। इस आधुनिक संत कवि को सत्य कहने और लिखने में ही जीवन की सार्थकता दिखायी देती है। वे किसी भी साहित्यवाद के भीतर बंधकर नहीं लिखते। दरअसल पराधीनता उन्हें किसी तरह की स्वीकार नहीं थी– न वाद की, न अंग्रेजी की, न परायी भाषा की, न अभिव्यक्ति की, न पद सत्ता की। वे सदैव स्थापित व्यवस्था के विरोध में रहे। दलितों–उपेक्षितों दुर्भाग्य के मारे ग्रामीण बच्चों के लिए उन्होंने सदैव संघर्ष किया। फलस्वरूप उनकी कविता आत्मभिव्यक्ति के भीतर

आत्मदान और आत्मप्रसाद की कविता है। उनकी रचनाओं में एक ऐसी सरलता और ताजगी है जो आज के किसी अन्य कवि में दिखाई नहीं देती। उनके काव्य की शक्ति किसी असाधारण तत्व पर निर्भर न रहकर, साधारण को साधारण बनाये रखकर हृदय के मर्म को सीधे स्पर्श करने में निहित है। कहना न होगा उनमें इकबाल और निराला दोनों की अनुगूंज सुनाई देती है। उनकी कविता में भारतीय मानस अभिव्यक्त हुआ है।

6.2 जीवन परिचय

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म होशंगाबाद के टिगरिया नामक गाँव में (29 मार्च, 1913 ई०) में एक पुजारी परिवार में हुआ था। उनके पिता सीताराम मिश्र संस्कारवान व्यक्ति थे। वे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी तीनों विषयों का ज्ञान रखते थे। रात दिन रामायण का पाठ करते थे और बालक भवानी प्रसाद को कविता सुनाते और याद कराते थे। भवानी प्रसाद की माँ गोमती देवी परोपकारी और वैष्णव संस्कारों की महिला थी। मातृ संस्कारों और पिता के काव्य संस्कारों का प्रभाव भवानी प्रसाद के काव्य संस्कारों पर गहरा है। उनकी मानसिकता का गठन गाँव, नदी पर्वत से हुआ। "छोटी सी जगह में रहता था, छोटी सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विध्यांचल के आँचल में छोटे से लोगों के बीच। साधारण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा–लिखा और काम भी किए वे भी असाधारण से अछूते। मिश्र जी का बचपन बैतूल, सुहागपुर और खण्डवा नगरों में व्यतीत हुआ। उन्होंने जबलपुर को रॉबर्टसन कॉलेज में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1942 में भारत छोड़ों आन्दोलन में भाग लेने के कारण तीन वर्षों तक जेल में रहना पड़ा। इसी जेल जीवन में उन्होंने बंगला भाषा का अध्ययन किया। मिश्र जी ने कुछ समय तक वर्धा के महिला आश्रम में अध्यापन किया। फिल्मों में गीत लिखे तथा आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र में हिन्दी विभाग के प्रधान पद पर कार्य किया। इसके पश्चात् उन्होंने 'सम्पूर्ण गाँधी वाड्मय' का सम्पादन किया। मिश्र जी साहित्य जगत में भवानी भाई के नाम से प्रसिद्ध थे। 20 फरवरी 1985 ई० को यह महान आत्मा पंचतत्व में विलीन हो गई।

6.3 साहित्यिक अवदान

छायावादोत्तर कविता में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम अपनी अलग राह और अलग काव्य खोज भावचेतना के कारण एकदम विशिष्ट है। मुझ पर किन कवियों का प्रभाव पड़ा, यह भी एक प्रश्न है। किसी का नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। निराला प्रसाद और पंत फैशन में थे। ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता मुझे नहीं भा गयी। अंग्रेजी स्वछन्दतावाद के कवियों में वर्डसवर्थ और ब्राडनिंग को खूब पढ़ा। इधर रवीन्द्रनाथ प्रिय कवि रहे। वाल्मीकि–कालिदास तथा भक्तिकाल के सन्त कवियों में इनका मन रमा और यह प्रभाव इनके कवि कर्म पर साफ दिखाई देता है। वड्सवर्थ की एक बात उन्हें बहुत जँची कि "कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल की भाषा हो"।

मिश्र जी ने बाल्यकाल से ही लेखन कार्य आरम्भ कर दिया था, परन्तु अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा तार सप्तक' में प्रथम बार उनकी रचनाओं को पाठकों के सम्मुख आने का अवसर मिला। उन्होंने 'कल्पना' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। मध्य प्रदेश कला परिषद ने उन्हें 'शिखर पुरस्कार' तथा दिल्ली प्रशासन कला परिषद ने 'गालिब पुरस्कार' से सम्मानित किया। उनकी कविता में बोलचाल है, संवाद है, एक दूसरे को जोड़ने की ताकत है। वे अपनी कविता में लिखते हैं–

"जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
ओर इसके बार भी हमसे बड़ा तू दिख।"

नोटस

मिश्र जी को सन् 1943 ई० में तीन साल की जेल हुई। इसी बीच उन्होंने बांग्ला सीखी तथा बंग्ला साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया। जो मूर्त और प्रत्यक्ष मानव है वही उनके सृजन का लक्ष्य है। कविता में वही लिखा जो उनके काव्यानुभव का विषय रहा। झूठी काव्य–गप्प से सदैव दूर रहे। उनके व्यक्तित्व पर नर्मदा और तप–तेज के प्रतीक परशुराम की परंपरा का गहरा प्रभाव पड़ा। भवानी भाई पत्रकारिता और कविता में गांधी–विचार दर्शन के जीवन भर श्रद्धावान व्याख्याता रहे। उन्होंने माखनलाल जी की एक बात गाँठ बाँध ली की "तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाए, इसकी सावधानी रखना। किन्तु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात, और वह इस तरह कि वह न तो सूत्रबद्ध हो न भाष्य। जो मन में न समा सके उसे वाणी तक लाओ। किन्तु जुबांदराजी मत करो। कलम को जीभ मत बनने देना।"

जीवन में जो कुछ स्वस्थ है, मंगलदायक है, आहलादकारी है उसे उभारने एवं प्रचारित–प्रसारित करने के लिए ही इन्होंने काव्य को साधन बनाया है। 'गीत–फरोश' नामक प्रसिद्ध रचना में इन्होंने कवि सम्मेलनों एवं सर्वज्ञ बनने का दावा करने वाले रचनाकारों पर परोक्षता प्रहार किया है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और ऊब को प्राकृतिक एवं मानवीय सौंदर्य एवं गरिमा से मुक्ति प्राप्त कर सम्पन्न किया जा सकता है, यह विश्वास इनकी रचनाओं में मुखर हुआ है। इस प्रकार मिश्र जी ने अपनी मौलिक लेखनी से हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की।

6.4 रचनाएँ

मिश्र जी ने सन् 1930 ई० से काव्य सृजन शुरू किया और तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में खूब छपते रहे। कवि रूप में उनकी ख्याति 1940 ई० तक फैल गई पर एक साथ बहुतसी कविताएँ 'दूसरा सप्तक' (1951 ई० सं० अज्ञेय) में छपी जिनको पर्याप्त आदर मिला। प्रथम काव्य संग्रह "गीत फरोश" सन् 1956 ई० में प्रकाशित हो पाया। इस अकेले काव्य संकलन की कविताओं ने उनके कवि की धाक जमा दी। आधुनिक हिंदी कविता की विकास यात्रा का यह संकलन एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। गाँधी विचार दर्शन से ओत–प्रोत पाँच सौ कविताओं का संकलन "गाँधी पंचशती" के नाम से आया।

मिश्र जी की मुख्य काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है–

गीत फरोश, अंधेरी कविताएँ, व्यक्तिगत चकित है दुःख, गांधी पंचशती, खुशबू के शिलालेख बुनी हुई रस्सी, परिवर्तन जिए, त्रिकाल संध्या, अनाथा तुम आते हो, इंद न मम्, इन्द्रकुसुम कालजयी, शरीर कविता फसलें और फूल मान सरोवर दिन, सम्प्रति, तुकों के खेल, नीली रेखा तक, जल रही हैं सड़कों पर बत्तियाँ, वे कोहरे मेरे हैं, तूस की आग आदि प्रसिद्ध काव्य संकलन है।

इन्होंने एक प्रबंध काव्य की भी रचना की है। "कालजयी" नामक यह प्रबंध कृति अशोक की कथा पर आध ारित होने से ऐतिहासिक प्रबंध काव्य की श्रेणी में आती है। इसमें ऐतिहासिक कथा के माध्यम से कवि ने प्रेम–अहिंसा के मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

भवानी प्रसाद मिश्र का सम्पूर्ण काव्य सृजन मानवीय मूल्यों की विश्व दृष्टि का अक्षय भंडार है। देश और काल की सीमाओं को अतिक्रान्त करते हुए वे प्रगतिशील चेतना के तेजस्वी रचनाकार हैं। 'कवि' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है "कलम अपनी साथ/और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध/ यह कि तेरी भर न हो तो कह/ और बहते बने सादे ढंग से तो वह।" कहना न होगा कि अन्याय और अत्याचार के सक्रिय विरोध में खड़े इस कवि की वाणी में तलवार से ज्यादा पैनी धार है।

6.5 काव्यगत विशेषताएँ

मिश्र जी चिंतन को अनुभूति में फेंटकर प्रस्तुत करने में दक्ष हैं। सहज संवेदना के कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कविता भावपक्ष की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है। उसमें सहजता, सरलता और निकटता का भाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। उनकी आत्माभिव्यक्ति में भाव उष्मा के साथ आत्म–विस्तार और आत्म परिष्कार के तत्व प्रधान रहते हैं। मूलतः उनकी काव्य संवेदना में गांधी विचार दर्शन के मूलाधारें का विस्फोट है और यह विस्फोट गीतात्मक है। मिश्र जी की कविता में प्रेम की एक पक्षीयता के दर्शन होते हैं। उसमें आकुलता, आँसू अभाव की चर्चा अधिक हुई है।

मिश्र जी मानववादी कलाकार हैं। मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा उनकी अभीष्ट हैं मानववादी भावना काव्य में सर्वत्र समाहित हैं चाहे कवि प्रकृति की दृश्यावली में डूबा हो या विशेष मनःस्थिति में आत्मस्थ हो गया हो। मिश्र जी के काव्य में 'प्रगतिशील चेतना' के भी दर्शन होते हैं। कवि ने अपनी प्रगतिशील चेतना से पूँजीपतियों, सामन्तों और शासकों के अत्याचारों का सजीव वर्णन करके उत्पीड़न को साकार किया है। मिश्र जी मानवीय संवेदना और निष्ठा के कवि हैं। मानवीय संवेदना ने कवि की कविता में करूणा और पीड़ा को जन्म दिया है। भवानी भाई निराशावादी न होकर आशावादी हैं। उनकी कविता में यथार्थ की भावना पूर्ण रूप से उजागर हुई है। नयी कविता में वे एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति में किसान, मजदूर बच्चे और नारी इन सभी की समस्याओं का दर्द मूल संवेदना में जज्ब होकर सहजता से बोलता है। उन्होंने अपनी काव्यानुभूति का संस्कार स्वाधीनता आंदोलन की मुक्ति चेतना से किया है। अंग्रेज और अंग्रेजितयत, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और रूसी साम्राज्यवाद पर चोट की है। उनका कथन है "मैंने अपनी कविता में प्रायः वही लिखा है जो मेरी पकड़ में ठीक आ गया है। दूर की कौड़ी लाने की महत्वकाक्षा भी मैंने कभी नहीं की।" बहुत मामूली रेजमर्रा के सुख–दुःख मैंने इनमें कहे हैं जिनका एक भी शब्द किसी को समझाना नहीं पड़ता– शब्द टप–टप टपकते हैं फूल से/सही हो जाते हैं मेरी भूल से। लोकजीवन की खरी संवेदना ही उनकी काव्य वस्तु का मूलाधार है। काव्यानुभूति में लोक वेदना का यही संसार घुमड़ता रहता है जैसे–

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल हैं पर भाग पत्थर से अड़े हैं
धूल के हीरे नहीं अब धूल हैं ये
फूल जंगल के नहीं अब शूल हैं ये।

उन्होंने झोंपड़ी और महलों की लड़ाई को समझते हुए लिखा है कि यदि झोंपड़ी मिटेगी तो महल भी नहीं बचेगा–

'एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी मिट जायेगा नीलम निलय भी।'

मिश्र जी ने अपने काव्य में मुख्य रूप से करूण श्रृंगार, वीर, शान्त आदि रसों का विशेष रूप से प्रयाग किया है। मिश्र जी प्रकृति के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति सौंदर्य के चित्र इतनी गहराई से सहजता और सजीवता से उभारे हैं कि उनमें प्रकृति मोहक और यथार्थ रूप से साकार हो उठी है। इस कविता के सौंदर्य संसार में मानव तथा प्रकृति दो नहीं हैं– दोनों में अद्वैत है। यही उनके चिंतन का काव्यात्मक अद्वैतवाद है। वे नदी की तरह बहना, फूल की तरह खिलना, धूप की तरह फैलना चाहते हैं। विन्ध्य पर्वत और नर्मदा के वन उनमें विस्तार पाए हुए हैं। फलतः जनमन से एकाकार होकर ही इस कविता में शक्ति आई है।– वे ऐसा गाँव देखते रहे हैं–

गांव जिसमें झोपड़ी है घर नहीं है
झोपड़ी की फटकियाँ हैं दर नहीं है,
धूल उठती है, धुएँ से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

पर इस कविता में जो मनुष्य परिभाषित हुआ है वह एकदम मस्त और श्रमी आदमी है।

फूल चढ़ाकर हम अपने लघु अस्तित्व को किसी महत्तर के प्रति अर्पित कर देते हैं। भवानी भाई अपनी कविता में इस प्रकृति सन्दर्भ को जगह–जगह अभिव्यक्ति देते हैं–

फूल लाया हूँ कमल के क्या करूँ इनका
पसारें आप आंचल छोड़ दूँ हो जाए जी हलका।

मिश्र जी ने अपना 'सारा शहर' कविता में वर्तमान त्रासदी का चित्रण किया है। व्यंग्य मिश्र जी की रचनाओं का प्राण है। मिश्र जी की कविताओं में व्यक्तिवादी चेतना, कर्म और स्वाभिमान, अपूर्व जिजीविषा जैसे भाव भी देखने को मिलते हैं। भवानी भाई गाँधीवादी कवि हैं। गाँधी दर्शन अनुभूति के स्तर पर उनके विचारों में घुलमिलकर उनके काव्य में प्रकट हुआ है। उन्होंने अपने 'गाँधी पंचशती' कविता का संग्रह में अपनी गाँधीवादी विचारधारा का भव्य परिचय दिया है।

भवानी भाई की काव्य भाषा सहज, सरल, बोधगम्य और स्वभाविक बन पड़ी है। अज्ञेय जी का यह कथन भवानी प्रसाद मिश्र की कविता पर एकदम खरा सिद्ध होता है कि "काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। शब्द का ज्ञान–शब्द की सार्थकता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाता है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हें और इसी में विलय होते हैं। ध्यान देने की बात है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने शब्द–साधना को हर कीमत पर बनाये रखा है– उनकी प्रतिज्ञा रही है–

शब्दों का सही उपयोग योग है
ओर कल्याणकारी है योग की तरह
शब्द का मनमाना उपयोग भोग है
और विनाशकारी है भोग की तरह।

मिश्र जी के काव्य कथन उनकी काव्यभाषा की विशेषताएँ स्वतः कह देते हैं–

1. 'अभी बैन
अभी बान
अभी बानों के सिलसिले'

2. सवाल यह है कि जो आग छिपी है
शब्दों में उसे हम इस अंधेरी रात में
सुलगा सकते हैं कि नहीं।

उन्होंने अपने को संस्कृत की तत्सम शब्दावली से बचाकर रोजाना की बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा उनके समक्ष कबीर की भाषा की तरह दासी सी प्रतीत होती है। वास्तव में भाषा की दृष्टि से मिश्र जी का काव्य जन–जन का है। प्रयोगवादी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने अधिकांश रूप से छन्द मुक्त कविताएँ लिखी हैं। परंतु उनमें लय और ध्वन्यात्मकता का पूर्ण ध्यान रखा है। मिश्र जी ने अपने व्यक्तित्व अनुभूति और आस्था के सन्दर्भ में प्रतीकों का प्रयोग किया है। भवानी भाई ने अपनी कविता में

नोटस

विविध प्रकार के बिम्बों को भी अपनाया है। अपने पाठक से हृदय से संवाद करते हुए वे छायावादियों की भांति चित्र मोह में नहीं पड़ते अनायास ही वे सन्नाटा का बिंब ला सकते हैं और नींद से ऊंघते सतपुड़ा के जंगल, नर्मदा के गति बिंब भी। आजादी के बाद के शब्द बिंबों में आंक सकते हैं जैसे–

1. *बन्द गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं।*
2. हाय रे, बचपन तलक सुख से न बीता।
3. जी लोगों ने तो बेच दिए ईमान।
4. *आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी।*

मिश्र जी ने अपने काव्य में अलंकारों का सहज, सरल और स्वाभाविक प्रयोग किया है। अलंकारों का छली रूप मिश्र जी को मोहित नहीं कर सका। मिश्र जी की भाषा की तरह ही शैली सरल, सहज और प्रवाहमय है।

छायावादोत्तर हिंदी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र को संतों की लोकजागरण परंपरा में रखकर ही परखा जा सकता है। सत्य कहने के लिए वे हर तरह का जोखिम उठाने को हर समय तैयार रहते हैं व्यवस्था विरोध में उनका विद्रोही निर्भय रहता है। उनकी कविता का संकल्प यही रहा है कि शब्द को तलवार से ज्यादा पैना बनाना है। गॉव के प्राणी की व्यथा को जन–भाशा में अभिव्यक्ति करना है। शब्द की रक्षा ही मानव की रक्षा है–

शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।

बोलचाल की काव्य भाषा, प्रतीक विधान छंद और लय में भी उनका स्वर अलग सुनाई देता है। वे रूपविधान से ज्यादा विषय वस्तु की महत्ता को स्थान देते हैं। वैचारिक स्वर पर अस्तित्ववाद, अलगाववाद के पश्चिमी दर्शन को अपनी कविता में भटकने तक नहीं देते। एकदम सहज गद्य विन्यास बोलचाल का लहजा और छंदों का खनकता प्रयोग करते हैं। अपनी सर्जनात्मक मौलिकता से उन्होंने नयी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है।

6.6 मूल्याँकन

इस प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य के लिए अनुपम देन है। उन्होंने अपनी सहज और प्रतिभावान लेखनी से हिन्दी जगत को ऐसा मार्ग प्रदान किया, जो नए कवियों के लिए आदर्श सिद्ध हुआ है। मौलिकता और अछूतेपन के गुणों से उनकी रचनाएँ ओत–प्रोत हैं। उन्होंने अपनी सहज और बेबाक लेखनी से प्रयोगवादी एवं नयी कविता की काव्यधारा को नया जीवन प्रदान किया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह जन–जन के लिए है। इसलिए उनका काव्य जनसाधारण को समर्पित है।

कालजयी– "भवानीप्रसाद मिश्र"

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. मिश्र जी के माता–पिता का नाम व जन्म स्थान लिखिए।

प्र०2. भवानीप्रसाद मिश्र की जीवन दृष्टि पर किस विचारधारा का प्रभाव है?

प्र०3. भवानीप्रसाद मिश्र के प्रबंध काव्य का नाम लिखिये?

नोटस

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. भवानीप्रसांद मिश्र के रचनाकार व्यक्तित्व की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

प्र०2. भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय दीजिए।

प्र०3. *"भवानीप्रसाद मिश्र का कवि जनजीवन के संघर्षों को किस रूप में व्यक्त करता है।"* चार पंक्तियों में लिखिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र०1. मिश्र जी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र०2. भवानीप्रसाद मिश्र का साहित्य में क्या योगदान है। स्पष्ट कीजिए।

प्र०3. भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन–परिचय तथा रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

नोटस

खंड
7
रस

पाठ का प्रारूप

7.1 रस के स्वरूप
7.2 अस्थायी भावः अर्थ
7.3 स्थायी भाव एवं उनसे सम्बन्धित रस
7.4 संचारी अथवा व्यभिचारी भाव
7.5 रस–निष्पति में संचारी भावों का महत्व
7.6 रसों का परिचय
7.7 श्रंगार रस
7.8 उपकरण
7.9 श्रृंगार रस के भेद
7.10 भक्ति रस के उपकरण
7.11 परिभाषा वात्सल्य रस
7.12 कथा नामकरण के अनुसार
7.13 वीर रस
7.14 शान्त रस
7.15 करुण रस
7.16 रौद्र रस
7.17 भयानक रस
7.18 वीभत्स रस
7.19 अद्भुत रस
7.20 हास्य रस

काव्य अलौकिक आनन्द का प्रदाता है। काव्य का यह अलौकिक आनन्द ही रस है। संस्कष्त में 'रस' षब्द की व्युत्पत्ति रसस्यर्त असो इति रसाः के रूप में की गई है, अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है। परन्तु साहित्य में काव्य को "पढ़ने, सूनने या उस पर आधारित अभिनय को देखने से जो आनन्द प्राप्त होता है उसे रस कहते हैं।"

सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रस के वरूप को स्पष्ट किया था। रस की निष्पति के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

"विभावानुभावव्यभिरिसयोगाद्रसनिष्पतिः"

"अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पति होती है।" इस प्रकार काव्य पढ़ने, सुनने या अभिनय देखने पर विभाव आदि के संयोग से उत्पन्न होने वाला आनन्द ही **'रस'** है।

काव्य में रस का वही स्थान है, जो "शरीर में आत्मा का है।" जिस प्रकार आत्मा के अभाव में प्राणी का अस्तित्व समीव नहीं है, उसी प्रकार, रसहीन कथन को काव्य नहीं कहा जा सकता है। "इस प्रकार रस काव्य की आत्मा है।" और स्पष्ट षब्दों में–आलम्बन, विभाव के उद्रबुद्ध उद्दीपन से उद्दीप्त, व्यभिचारियों से परिपुष्ट तथा अनुभावों से परिव्यक्त सहृदय का स्थायी भाव ही रस–दशा को प्राप्त होता हैः–

विभावेनानुभावेव व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति इत्यादिः स्थायिभावः संचेतसाम्।"

जाए, वही रस है। परन्तु साहित्य में काव्य को "पढ़ने, सूनने या उस पर आधारित अभिनय को देखने से जो आनन्द प्राप्त होता है उसे रस कहते हैं।"

सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रस के वरूप को स्पष्ट किया था। रस की निष्पति के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

"विभावानुभावव्यभिरिसयोगाद्रसनिष्पतिः"

"अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पति होती है।" इस प्रकार काव्य पढ़ने, सुनने या अभिनय देखने पर विभाव आदि के संयोग से उत्पन्न होने वाला आनन्द ही **'रस'** है।
काव्य में रस का वही स्थान है, जो "शरीर में आत्मा का है।" जिस प्रकार आत्मा के अभाव में प्राणी का अस्तित्व समीव नहीं है, उसी प्रकार, रसहीन कथन को काव्य नहीं कहा जा सकता है। "इस प्रकार रस काव्य की आत्मा है।" और स्पष्ट शब्दों में–आलम्बन, विभाव के उद्रबुद्ध उद्दीपन से उद्दीप्त, व्यभिचारियों से परिपुष्ट तथा अनुभावों से परिव्यक्त सहृदय का स्थायी भाव ही रस–दशा को प्राप्त होता हैः–

विभावेनानुभावेव व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति इत्यादिः स्थायिभावः संचेतसाम्।"

7.1 रस के स्वरूप

इस प्रकार काव्य के पढ़ने या सुनने से सहृदय को जिस आनन्द विशेष की अनुभूति होती हैः–

"काव्याचार्यों ने उसे ही रस कहा है।"

यह इस साधारण और लौकिक रसों से भिन्न और विलक्षण है। यह हृदय की वस्क है, सहृदय व्यक्ति हृदय से उसका आस्वादन करता है।

आचार्यों ने काव्य के आत्म–तत्व के अनुसंधान में अलंकार, रीति, वक्रोति, ध्वनि रस आदि तत्वों को काव्य की आत्मा कहा है और अन्ततः रस को काव्य की आत्मा मानते हुए, आचार्य विश्वनाथ ने "रसात्मक वाक्य ही काव्य है" की उद्घोषणा की– "वाक्य रसात्मक काव्यम्"।।

रस के अंग या अवयव

आचार्य भरतमुनि ने विभाव, अनुभाव और संचारी भावों को रस के अवयव अथवा अंग माना है। इस प्रकार रस के चार अवयव हैं:–

(क) स्थायी भाव

(ख) विभाव

(ग) अनुभाव

(घ) संचारी अथवा व्यभिचारी भाव

रस के इन विभिन्न अंगों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है:—

7.2 अस्थायी भावः अर्थ

मनुष्य के हृदय में हर समय रहने वाले भाव स्थायी भाव कहलाते हैं। ये सुप्त अवस्था में रहते हैं, किन्तु उचित अवसर पर स्वयं जागृत हो जाते हैं और विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा पुष्ट होकर किसी रस–विशेष में परिणत हो जाते हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ का कथन कुछ अधिक स्पष्टता लिये हुए स्थायी भाव की महिमा विज्ञाप्त करता है:— जिस भाव का स्वरूप सजातीय एवं विजातीय भावों से तिरस्कृत न हो सके और जब तक रस का आस्वादन हो, तब तक जो वर्तमान रहे, वह स्थायी भाव कहलाता है"

सजातीयविजातीयैरतिरस्कृतमूर्तिभास्।

यावद्रसं वर्तमानः स्थायिभाव उदाहरणतः पण्डितराज ने अपनी परिभाषा में स्थायी संज्ञा का यह आधार विर्दिष्ट किया है कि काव्य अथवा नाटक के अनुशीलन अथवा प्रक्षेपण की अवधि से सामाजिक का चित अनेक अवान्तर प्रसंगों के बीच भी उस मूलभूत भाव की प्रतीति से ही चमत्कृत होता रहता है।
रामचन्द्र शुक्ल ने भी संस्कृत के आचार्यों द्वारा निरूपति स्थायी भाव के इसी प्रकार के स्थायित्व का सामान्यतया अनुमोदन किया है।

7.3 स्थायी भाव एवं उनसे सम्बन्धित रस

एक स्थायी भाव का सम्बन्ध एक रस से होता है। इनकी संख्या नौ है, किन्तु कुछ आचार्यों ने इनकी संख्या ग्यारह निर्धारित की है। ये ग्यारह स्थायी भाव और इनमें सम्बन्धित रसों के नाम इस प्रकार हैं:—

	स्थायी भाव	रस		स्थायी भाव	रस
(1)	रति	श्रंगार	(2)	हास	हास्य
(3)	शोक	करूण	(4)	क्रोध	रौद्र
(5)	उत्साह	वीर	(6)	भय	भयानक
(7)	आश्चर्य	अद्भुत	(8)	जुगुप्सा, ग्लानि	वीभत्स
(9)	निर्वोद	शान्त	(10)	वत्सलता	वात्सल्य
(11)	देवविषयक रति	भक्ति			

इनमें अनितम दो स्थायी भावों (वत्सलता तथा देवविषयक रति) को श्रृंगार के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक स्थायी भाव का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है:—

रति

स्त्री–पुरूष की एक–दूसरे के प्रति उत्पन्न प्रेम नामक चितवृति को **'रति'** स्थायी भाव कहते हैं।

हास

रूप, वाणी एवं अंगों के विकारों को देखने से चित का विकसित होना 'हास' कहलाता है।

शोक

प्रिय वस्तु (इष्टजय, वैभव आदि) के नाश इत्यादि के कारण उत्पन्न होने वाली चित की व्याकुलता को 'शोक' कहते हैं।

क्रोध

असाधारण अपराध, विवाद, उत्तेजनापूर्ण अपमान आदि से उत्पन्न मनोविकार को 'क्रोध' कहते हैं।

उत्साह

मन की वह उल्लासपूर्ण वृत्ति, जिसके द्वारा मनुष्य तेजी के साथ किसी कार्य को करने में लग जाता है 'उत्साह' कहलाती है। इसकी आभव्यक्ति शक्ति, शौर्य एवं धैर्य के प्रदर्शन में होती है।

भय

हिंसक जन्तुओं के दर्शन, अपराध, भयंकर शब्द, विकृत चेष्टा और रौद्र आकृति द्वारा उत्पन्न भय की व्याकुलता को ही 'भय' स्थायी भाव के रूप में परिभाषित किया जाता है।

आश्चर्य

अलौकिक वस्तु को देखने, सुनने या उसके स्मरण करने से उत्पन्न मनोविकार 'आश्चर्य' कहलाता है।

जुगुप्सा

किसी अरूचिकर या मन के प्रतिकूल वस्तु को देखने अथवा उसकी कल्पना करने से जो भाव उत्पन्न होता है, वह 'जुगुप्सा' कहलाता है।

निर्वेद

सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य की उत्पत्ति 'निवेदि' कहलाती है।

वत्सलता

माता–पिता का सन्तान के प्रति अथवा भाई–बहन का परस्पर सात्विक प्रेम ही 'वत्सलता' कहलाता है।

देव–विषयक रति

ईश्वर में परम अनुरक्ति ही 'देवविषयक रति' कहलाती है।

रस–निष्पति में स्थायी भाव का महत्व

स्थायी भाव ही परिपक्व होकर इस दशा को प्राप्त होते है; इसलिए रस निष्पति में स्थायी भाव का सबसे अधिक महत्व होता है। अन्य सभी भाव और कार्य स्थायी भाव की पुष्टि के लिये होते हैं।

विभाव

भरत ने **'नाट्यशास्त्र'** में विभाव की व्याख्या की है और उसे इस निष्पत्ति के लिए आवश्यक तत्व माना है। जो कारण (व्यक्ति, पदार्थ आदि) दूसरे व्यक्ति के हृदय में स्थायीभाव को जागृत तथा उद्दीप्त करते हैं, उन्हें **'विभाव'** कहते हैं।

विभाव के भेद

विभाव आश्रय के हृदय में भावों को जागृत भी करते हैं और उद्दीप्त भी। इस कारण विभाव के दो भेद हैं:–

(1) आलम्बन विभाव तथा (2) उद्दीपन विभाव

आलम्बन विभाव

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार "आलम्बनों नायकादिस्तमालम्ब्य रसोदमात।" इसी का भावानुवाद देव इस प्रकार करते हैं–"रस उपजे आलीम्ब जिहि सौ आलम्बनं होई।" जिस व्यक्ति अथवा वस्तु के कारण किसी व्यक्ति में कोई भाव जाग्रत होता है। उस व्यक्ति अथवा वस्तु को उस भाव का 'आलम्बन विभाव' कहते हैं, जैसे–यदि किसी व्यक्ति के मन में साँप को देखकर 'भय' नामक स्थायी भाव जाग जाए तो यहाँ 'साँप' उस व्यक्ति में उत्पन्न 'भय' नामक स्थायी भाव का आलम्बन विभाव होगा।

उद्दीपन विभाव

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में– "उद्दीपनविभावस्तु रस– *मुद्दीपयक्ति ये। आलम्बनस्य चेष्टायाः दशकालदयस्तथा।*" अर्थात् रस को उद्दीप्त करने वाली आलम्बन की चेष्टादि तथा देशकाल की स्थितियाँ 'उद्दीपन विभाव' हैं। स्थायी भावों को उद्दीप्त तथा तीव्र करने वाला कारण 'उद्दीपन विभाव' कहलाता है। जैसे–साँप की फुंफकार।

रस–निष्पति में विभाव का महत्व

हमारे मन में रहने वाली स्थायी भावों को जागृत करने तथा उद्दीप्त करने का कार्य विभाव द्वारा होता है। जागृत तथा उद्दीप्त स्थायी भाव ही रस का रूप प्राप्त करते हैं। इस प्रकार रस–निष्पति में विभाव का अत्याधिक महत्व है।

अनुभाव

अर्थः– आश्रय की चेष्टाओं अथवा रस की उत्पत्ति को पुष्ट करने वाले वे भाव, जो विभाव के बाद उत्पन्न

होते हैं 'अनुभाव' कहलाते हैं। भावों को सूचना देने के कारण ये भावों के 'अनु' अर्थात् पाश्चात्वर्ती माने जाते हैं।

अन्य शब्दों में मानव मन में स्थायी भाव के जागृत होने पर मनुष्य में कुछ शारीरिक चेष्टाएं उत्पन्न होती हैं। जिन्हें 'अनुभाव' कहा लाता है, जैसे– साँप को देखकर व्यक्ति चिल्लाने या भागने लगे, तो उसकी क्रिया अनुभाव कहलाएगी।

आचार्य भरत वाणी तथा अंग संचालनादि द्वारा व्यक्त अभिनय रूप भावाभिव्यंजना को अनुभाव कहते हैं। धनंजय अनुभावों का विकार रूप तथा भावों का सूचक मानते हैं। विश्वनाथ ने अनुभावों को आलम्बन, उद्दीपन आदि कारण से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाति करने वाले कार्य को अनुभाव बतलाया है।

देव उसी को इस प्रकार कहते हैं–

"जिनको निरखत परस्पर रस को अनुभव होई।
इन्हीं को अनुभाव पद कहत सयाव लोई।"

अस्तु, वाणी तथा अंग–संचालन आदि की जिन क्रियाओं से आलम्बन तथा उद्दीपन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जागृत भावों का साक्षात्कार होता है वह व्यापार 'अनुभाव' कहलाता है।
उदाहरणतः एकान्त स्थल पर प्रियतम को पाकर मन में रति का अनुभव करते हुए गायिका का उसकी ओर कटाक्षपात करना, संकेत से उसे बुलाना, रोमांचित हो जाना, सावधानी के लिए इधर–उधर देखना उसके व्यवहार अनुभाव कहलायेंगे। हेमचन्द्र, याबुदत तथा शारदालय ने अनुभाव को हेतु रूप और कविराज विश्वनाथ, धनंजय शिंगभूपाल तथा पण्डितराज ने इन्हें कार्य रूप माना है। प्रत्येक रस के विचार से यह अनुभव भी पृथक–पृथक होते हैं।

अनुभाव के भेद

अनुभाव के मुख्य रूप से निम्नलिखित पाँच भेद होते हैं:–

(1) कायिक (2) मानसिक (3) वाचिक
(4) आहार्य (5) सात्विक

कायिक अनुभव

प्रायः शरीर की कृत्रिम चेष्टा को 'कायिक अनुभाव' कहा जाता है। अन्य शब्दों में भाव की परिसूचक शारीरिक चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहा जाता है। जिस रति भाव के अन्तर्गत कटाक्ष, चुम्बन, आलिंगन आदि शारीरिक चेष्टाएं "कायिक अनुभाव" हैं।

मानसिक अनुभाव

हृदय की भावना के अनुकूल मन में हर्ष–विषाद, आनन्द अथवा मस्तिष्क के तनाव आदि उत्पन्न होने को मानसिक अनुभाव' कहते हैं। प्रायः 'मन सम्भव मीदादि कहै' इसके अन्तर्गत माना गया है। अन्तः करण की भावना के अनुकूल मन में हर्ष–विषाद आदि के उद्वेलन को 'मानसिक अनुभाव' कहते हैं। पन्त की इन पंक्तियों में इसका निर्वाह है:– "नाथ कह अतिशय मधुरता से दबे, सरस स्वर में, सुमुखि थी सकुचा गयी। उस अनूठें सूत्र में ही हृदय के भाव सारे भर दिये, ताबीज से (ज्योत्सना)"।

नोटस

वाचिक अनुभाव

वाचिक का अर्थ है– "वाणी से किया हुआ। जिस कथोपकथन या स्वागत संलाप आदि शब्दों के माध्यम से, भाव का ज्ञान होता है, वह **वाचिक** अनुभाव कहलाता है।"

आहार्य अनुभाव

मन के भावों के अनुसार अलग–अलग प्रकार की कृत्रिम वेश–रचना करने को "आहार्य अनुभाव" कहते हैं। जब आरोपित की गई या स्वेच्छा से की गई वेश–रचना द्वारा भाव की सूचना मिलती है, तब उसे आहार्य अनुभाव कहते हैं। प्रवास से प्रियतम के लौटने पर प्रेमिका का श्रंगार करना, उसके हृदय के रति भाव का परिसूचक है। इसलिए यहाँ श्रंगार करना "आहार्य अनुभाव" है।

सात्विक अनुभाव

सात्विक का अर्थ है– "सत्वगुण से उत्पन्न।" हेमचन्द्र के अनुसार– 'सत्व' का अर्थ है 'प्राण'। स्थायी भाव ही प्राण तक पहुँकर 'सात्विक अनुभाव' का रूप धारण कर लेते हैं। अन्तः करण के विशेष धर्म 'सत्व' से उत्पन्न ऐसे शारीरिक या अंग–विकार को 'सात्विक अनुभाव' कहते हैं, जिससे हृदय से उत्पन्न रस या भाव का पता चलता है। इस प्रकार के शारीरिक विकारों पर आश्रय का कोई नियंत्रण नहीं होता। ये मनुष्य में स्थायी भाव उद्दीप्त होते ही स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं।

सात्विक अनुभाव के प्रकार

सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के होते हैं।

(1) **स्तम्भः**– रति, शोक, भय और विस्मय आदि भावों के कारण निष्क्रिय हो जाना।

(2) **स्वेदः**– हँसी, शोक, भय आदि भावों के कारण पसीना आ जाना।

(3) **रोमांचः**– प्रेम, आनन्द, भय और विस्मय आदि भावों के कारण शरीर के रांगटे खड़े हो जाना या शरीर में पुलक छा जाने को रोमांच कहते हैं।

(4) **वेपथुः**– प्रेम, उत्साह, क्रोध और भय आदि भावों के कारण शरीर का कम्पायमान होना वेपथु कहा जाता है।

(5) **स्वरभंगः**– प्रेम, हँसी, शोक, भय और विस्मयादि भावों के आवेग के कारण कण्ठ का गद्‌गद् हो जाना और स्वाभाविक रीति से शब्दों का न निकलना स्वरभंग कहा जाता है।

(6) **वैवर्ण्यः**– क्रोध, प्रेम, भय आदि के कारण मुख से रंग बदलने को वैवर्ण्य कहते हैं।

(7) **अश्रुः**– जहाँ नेत्रों में जल भर आने के माध्यम से प्रेम, हँसी, शोक, भय आदि भावों की सूचना मिले, वहाँ अश्रु सात्विक अनुभाव होता है।

(8) **प्रलयः**– किसी भी भाव के अत्यधिक आवेग के कारण शरीर के चेतना शून्य हो जाने को प्रलय कहा जाता है।

रस–निष्पति में अनुभावों का महत्व

स्थायी भाव जागृत और उद्दीप्त होकर रस–दशा को प्राप्त होते हैं। अनुभावों के द्वारा इस बात का ज्ञान

होता है कि आश्रय के हृदय में रस की निष्पति हो रही है अथवा नहीं। इसके साथ ही अनुभावों का चित्रण काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करता है।

7.4 संचारी अथवा व्यभिचारी भाव

अर्थ

जो भाव, स्थायी भावों को अधिक पुष्ट करते हैं, उन सहयोगी भावों को 'संचारी भाव' कहा जाता है। भरतमुनि ने संचारी भावों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि ये वे भाव हैं, जो रसों में अनेक प्रकार से विचरण करते हैं तथा रसों का पुष्ट कर आस्वादन के योग्य होता है। आश्रय के मन में उत्पन्न होने वाले अस्थिर मनोविकारों को संचारी भाव कहते हैं ये मनोविकार पानी के बुलबुलों की भांति बनते और मिटते रहते हैं, जबकि स्थायी भाव अन्त तक बने रहते हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र' में इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि इस शब्द में 'स' उपसर्ग है तथा चर धातु है, अतः अर्थ हुआ– रस के सम्बन्ध में जो अन्य वस्तुओं की ओर सचरण करे। इसी आधार पर धनंजय ने व्यभिचारी भावों की परिभाषा की है:–

"विशेषाद भिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः
स्थायिवतुन्मग्त्रनिर्मग्त्राः कल्लोला इव वारिधो।"

अर्थात् जो भाव विशेष रूप से स्थायी भाव की पुष्टि के लिए तत्पर या अभिमुख रहते हैं और स्थायी भावके अन्तर्गत आविर्भूत और तिरोहित होते दिखाई देते हैं, संचारी भाव कहलाते हैं। जैसे– लहरें समुद्र में पैदाहोती हैं और उसी में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही रव्यादि स्थायी भावों में निर्वेदादि संचारी भाव उन्मग्न तथा निमग्न होते रहते हैं। इस तरह संचारी भाव मुख्य रूप से स्थायी भाव से ही उठते–गिरते हैं। लहरों के उठने और गिरने से समुद्र का समुद्रत्व और भी पुष्ट हो जाता है, ठीक उसी तरह 'संचारी भाव' स्थायी भावों के पोषक होते हैं। स्थायी भाव स्थिर हैं तो संचारी संचरणशील और अस्थिर।

आचार्यों ने संचारी भावों की संख्या निश्चित कर दी है। भरत ने जिन 33 संचारियों का उल्लेख किया है, वे प्रायः सर्वमान्य हो गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:–

(1) निर्वेद

(2) आवेग

(3) वैग्य

(4) श्रम

(5) मद

(6) जड़ता

(7) उग्रता

(8) मोह

(9) विबोध

(10) स्वत्न

(11) अपस्मार

(12) गर्व

(13) मरण

(14) आलस्य

(15) अमर्ष

(16) निद्रा

(17) अवहित्था

(18) उत्सुकता

(19) उन्माद

(20) शंका

(21) स्मृति

(22) मति

(23) प्याधि

(24) सन्त्रास

(25) लज्जा

(26) हर्ष

(27) असूया

(28) विषाद

(29) धृति

(30) चपलता

(31) ग्लानि

(32) चिन्ता

(33) वितर्क

7.5 रस–निष्पति में संचारी भावों का महत्व

संचारी भाव स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं। वे स्थायी भावों को इस योग्य बनाते हैं कि उनका आस्वादन किया जा सके। यद्यपि वे स्थायी भाव को पुष्ट कर स्वयं समाप्त हो जाते हैं, तथापि ये स्थायी भाव को गति एंव व्यापकता प्रदान करते हैं।

7.6 रसों का परिचय

शास्त्रों के आचार्यों ने तैंतीस संचारी भाव और नौ स्थायी भाव। ये स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारियों के संयोग से इस रूप में परिणित होते हैं। स्थायी भाव और उनसे निष्पन्न रस निम्नलिखित हैं:–

(1) रति	–	इससे श्रृंगार, भक्ति और वात्सल्य रस निष्पन्न हैं।
(2) उत्साह से	–	वीर रस।
(3) निर्वेद (वैराग्य से)	–	शांत रस।
(4) शोक से	–	करूण रस।
(5) क्रोध से	–	रौद्र रस।
(6) भय से	–	भयानक रस।
(7) जुगुप्सा (घृणा से)	–	वीभत्स रस।
(8) विस्मय से	–	अद्‌भुत रस।
(9) हास से	–	हास्य रस।

इस प्रकार रसों की संख्या ग्यारह है:–

(1) श्रृंगार रस

(2) भक्ति रस

(3) वात्सल्य रस

(4) वीर रस

(5) शांत रस

(6) करूण रस

(7) रौद्र रस

(8) भयानक रस

(9) वीभत्स रस

(10) अद्‌भुत रस एवं

(11) हास्य रस

7.7 श्रृंगार रस

परिभाषा

किसी की आकृति, वेशभूषा, चेष्टा आदि को देखकर हृदय में जो विनोद का भाव जागृत हो वह 'हास' कहा जाता है। यही 'हास' जब विभाव अनुभाव तथा संचारी भाव से पुष्ट हो जाता है तो उसे 'हास्य रस'

कहा जाता है। "नायक और नायिका के मन में संस्कार रूप में स्थित रति या प्रेम जब रस की अवस्था को पहुँचकर आस्वादन के योग्य हो जाता है तो वह 'श्रृंगार रस' कहलाता है।"

शाब्दार्थ की दृष्टि से श्रृंगार 'कामोद्रेक' अथवा कामवृद्धि की प्राप्ति का द्योतक है। श्रृंगार में दो शब्द मिले हैं– श्रृंग तथा आर। इसमें श्रृंगार का अर्थ है– "कामोद्रेक अथवा काम की वृद्धि।" आर गत्यर्थ 'ऋतु' धातु से बना है, जिसका अर्थ यहाँ है– 'प्राप्ति' अतएव श्रृंगार का अर्थ हुआ "कामवृद्धि की प्राप्ति"।

अतएव जो रचना मानव हृदय की मधुरतम भूख, काम को उज्जीवित एवं परितृप्त करेगी, वह श्रृंगार रस की रचना कही जाएगी।

विश्व–साहित्य का एक अत्यन्त विस्तृत परिणाम इस हृदयवर्जक रस मन्दाकिनी से ओतप्रोत है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के छठे अध्याय में कहा है– श्रृंगार रस रति स्थायी भाव से उद्भूत होता है। उसका दश उज्जवल है। संसार में जो कुछ पवित्र, उज्जवल एवं दर्शनीय है, वह श्रृंगार से उपस्थित होता है। उज्जवल वेशवाला श्रृंगारवान कहा जाता है। जैसे पुरूषों के नाम, गोत्र, कुल तथा आचार से उत्पन्न एवं आत्तोपदेश से सिद्ध हुआ करते हैं, वैसे ही इन रसों, भावों तथा नाटकादित पदार्थों के नाम भी आत्तोपदेश से सिद्ध तथा आचार से बनते हैं, इसी प्रकार मनोहर तथा उज्जवल वेश होने से इस रस का नाम श्रृंगार पड़ा है। यह स्त्री–पुरूष के माध्यम से उत्पन्न होता है तथा उत्तम यौवन की प्रकृति के अनुकूल है। 'साहित्य–दर्पण' में विश्वनाथ ने श्रृंगार की परिभाषा दी है:– "श्रृग हि मक्यथेद्भेदस्तदागमनहेतकः। उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इध्यते।" अर्थात् काम के अंकुरित होने को श्रृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगार कहलाता है।

7.8 उपकरण

स्थायी भाव

श्रृंगार का स्थायी भाव रति है। भोजराज के अनुसारः– मन के अनुकूल विषयों में सुख का अनुभव करना रति है। विश्वनाथ ने भी रति से यही अर्थ ग्रहण किया है–"रतिममनिविकुलेलर्थे मनसः प्रवणायितम।" लेकिन अन्य आचार्यों ने 'रति' को श्रृंगार रस के सन्दर्भ में स्त्री–पुरूष के एक–दूसरे के प्रति नैसर्गिक आसक्ति के रूप में ही ग्रहण किया है। अतः स्त्री–पुरूष जब एक–दूसरे के मनोनुकूल हों, परिपूर्ण आनन्द का उपभोग करें या उनका रति भाव पूर्णतया प्रस्फुट हो जाये, तब वह श्रृंगार रस कहलायेगा।

"यूनोः परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः
सम्यक् सम्पूर्ण रतिभावो वा श्रृंगारः।"

आलम्बन विभाव

नायक और नायिका।

उद्दीपन विभाव

आलम्बन का सौन्दर्य, प्रकृति रमणीक उपवन, वस्तु–ऋतु, चाँदनी, भ्रमर–गुँजन, पक्षियों का कूंजन आदि।

अनुभाव

अवलोकन, स्पर्श, आलिगन, कटाक्ष, अश्रु आदि।

संचारी भाव

हर्ष, जड़ता, निर्वेद, अभिलाषा, चपलता, आशा, स्मृति, रूदन, आवेग, उन्माद आदि।

7.9 श्रृंगार रस के भेद

श्रृंगार रस के आचार्यों ने दो भेद किये हैं:– (1) संयोग श्रृगार या संभोग श्रृंगार तथा (2) विप्रलम्भ या वियोग श्रृंगार। इनका विवेचन निम्नलिखित है।

संयोग श्रृंगार

संयोगकाल में नायक और नायिका की पारस्परिक रति को **'संयोग श्रृंगार'** कहा जाता है। यहाँ संयोग का अर्थ– सुख की प्राप्ति करना। आचार्य धनंजय के अनुसार:– जहाँ अनुकूल विलासी एक–दूसरे के दर्शन–स्पर्शन इत्यादि का सेवन करते हैं, वह आनन्द से युक्त "संभोग श्रृंगार" रस कहलाता है। विश्वनाथ के अनुसार:– जहाँ एक–दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक और नायिका दर्शन, स्पर्शन इत्यादि का सेवन करते हैं, वह सम्भोग या संयोग श्रृंगार रस कहलाता है। संयोग श्रंगार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:–

दूलह श्रीरघुनाथ बने दूलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।।
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परंछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही, पल टारत नाहीं।।

–तुलसीदास

स्पष्टीकरण

इस पद में स्थायी भाव रति है। 'राम' आलम्बन 'सीता' आश्रय, नग में पड़ने वाला राम का प्रतिबिम्ब उद्दीपन, 'उस प्रतिबिम्ब को देखना, हाथ टेकना' अनुभाव तथा हर्ष एवं जड़ता का संचारी भाव है। अतः इस पद में संयोग श्रृंगार है।

वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार

एक–दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक एवं नायिका के मिलन के अभाव को विप्रलम्भ श्रृंगार कहा जाता है।

भोजराज के अनुसार

जहाँ रति नामक भाव प्रकर्ष को प्राप्त करे, लेकिन अभीष्ट को न पा सके, वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार कहा जाता है।

भानुदत्त के अनुसार

"युवा और युवती की परस्पर मुद्रित पंचोन्द्रियों के पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव अथवा अभीष्ट अप्राप्ति विप्रलम्भ है।"

उदाहरणः— विप्रलम्भ श्रृंगार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:—

रे मन आज परीक्षा तेरी!
सब अपना सौभाग्य मनावें।
दरस परस निः श्रेयस पावें।
उद्धारक चाहें तो आवें।
यही रहे यह चेरी!

—मैथिलीशरण गुप्त

स्पष्टीकरणः— इसमें स्थायी भाव 'रति' है। यशोधरा अवलम्बन है। उद्धारक गौतम के प्रति यह भाव कि 'वे चाहें तो आवें' उद्दीपन विभाव है। "मन को समझाना और उद्‌बोधन" अनुभाव हैं। 'यशोधरा का प्रणय' मान है तथा मति, वितक और अमर्ष संचारी है। अतः इसमें विप्रलम्भ श्रंगार है।

7.10 भक्ति रस

परिभाषा

भक्ति रस के विषय में आचार्यों में बड़ा मतभेद है। प्राचीन आचार्य इसे देव–विषयक रति मानकर श्रृंगार रस का ही एक भेद मानते रहे हैं। जहाँ पर परमात्मा–विषयक प्रेम विभाव आदि से परिपुष्ट हो जाता है, वहाँ पर 'भक्ति रस' की उत्पत्ति होती है। सूर काव्य चेतना नामक ग्रन्थ में डॉ० शंकरदेव अवतरे ने भक्ति रस की परिभाषा इस प्रकार दी है:—

सामाजिक हृदय का संस्कारवस्थित पशरति नामक स्थायी भाव, किसी पूजा आलम्बन विभाव से उद्‌बुद्ध उसके प्रशंसनीय कर्म तथा अन्य परिवेश रूप उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त, पशरति का प्रदर्शन करने वाले भक्त रूप आश्रय नामक काव्यपात्र के रोमांच आदि अनुभावों के द्वारा व्यंजित हर्षादि संचारी भावों के माध्यम से पुष्ट, काव्य में आश्रय नामक काव्यपात्र के रोमांच आदि अनुभावों के द्वारा व्यंजित हर्षादि संचारी भावों के माध्यम से पुष्ट, काव्य में आश्रय के भीतर उसी प्रकार प्रतीत पशरति के अभेद साधारण से व्यक्त होकर सामान्य "भक्तिरस" कहलाता है।

भक्ति रस के उपकरण

विषयक रति— ईश्वर में परम अनुरक्ति ही 'देवविषयक रति' कहलाती है।

(1) **स्थायी भावः**— भगवान–विषयक रति।

(2) **आलम्बन विभावः**— परमेश्वर, राम, श्रीकृष्ण आदि।

(3) **उद्दीपन विभावः**— परमात्मा के अद्‌भुत कार्य–कलाप, सत्संग, भक्तों का समागम आदि।

(4) **अनुभावः**— भगवान के नाम तथा लीला का कीर्तन, आँखों में आँसुओं का गिरना, गद्‌गद् हो जाना, कभी रोना, कभी नाचना आदि।

(5) **संचारी भावः**— निर्वेद, मति, हर्ष, विर्तक आदि।

भक्ति रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है:–

"प्रभु मौरे औगुन चित न हारौ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो चाहे तो पार करो।।
इक लोहा पूजा में शरणत, इक घर बधिक परो।
यह दुविधा पारस नहि जानत कंचन करत खरो।।"

स्पष्टीकरण

इन पंक्तियों में भगवान कृष्ण पररति के आलम्बन विभाव हैं। भगवान की समदर्शिता आदि आलम्बनगत उद्दीपन विभाव है। अतः स्तुत विश्व परिवेष प्रकृतिगत उद्दीपन है। भक्त सूर स्वयं ही आश्रय नामक काव्यपात्र हैं। जिसके अनुनय विनय रूप अनुभावों से स्पंजित दैव्यादि संचारी भावों के माध्यम से पुष्ट भक्त सहृदयों के हृदय का संस्कारावस्थित पररति नामक स्थायी भाव काव्य में सूर नामक आश्रय में उसी प्रकार प्रतीत पशरति के अभेद साधारण्य से व्यक्त होकर सामान्य या दास्य भक्ति रस का उदाहरण बना हुआ है।

7.11 वात्सल्य रस

परिभाषा

वात्सल्य शब्द वत्स से व्युत्पन्न और पुत्रादि विषयक रति का पर्याय है। उसका प्रयोग रस की अपेक्षा भाव के लिए अधिक उपयुक्त है। पुत्र, बालक, शिष्य, अनुज आदि के प्रति रति का भाव स्नेह कहलाता है। यही भाव परिपुष्ट होकर "वात्सल्य रस" की व्यंजना करता है।

कदाचित इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने 'वात्सल्य रस' न लिखकर 'सत्सलरस' लिखा और वत्सलता या वात्सल्य को उसका स्थायी भाव माना।

यथा भोजराज के अनुसार

"श्रृंगारवीरकरूणाद भुतरौद्रहास्थबीभत्सवत्सलभयानकशान्त नाम्नः। "विश्वनाथ के अनुसारः–

"स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी–सत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बन मतम्"।

अर्थात् प्रकट चमत्कार होने के कारण वत्सल को भी रस माना जाता है।

उपकरण

स्थायी भाव–स्नेह (वत्सलता)।

आलम्बन विभाव–पुत्र, शिशु एवं शिष्य।

उद्दीपन विभाव–बालक की चेष्टाएँ, तुतलाना, हठ करना आदि तथा उसका रूप एवं उसकी वस्तुएँ।

अनुभाव–स्नेह से बालक को गोद में लेना, आलिंगन करना, सिर पर हाथ फेरना, थपथपाना आदि।

संचारी भाव–हर्ष, गर्व, मोह, चिन्ता, आवेग, शंका आदि।

डॉ० शंकरदेव अवतरे ने वात्सल्य रस की परिभाषा इस प्रकार दी है:– "सामाजिक हृदय का लाल्या पशरति नामक स्थायी भाव भगवान के बालरूप आलंबन विभाव से उद्दबुद्ध है। वालसुलभ मनोरम चेष्टा तथा अन्य परिवेश रूप उद्दीपन विभाव क्रमशः आलंबनंगत और आलंबन बहिर्मूर्त उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त और लाल्या पशरति का प्रर्दान करने वाले भक्त, माता, पिता आदि आश्रय नाम काव्य पात्र रोमांचादि अनुभावों (सात्विक भाव विशिष्ट अनुभाव) के द्वारा व्यंजित औत्सुक्यादि संचारी भावों के माध्यम से पुष्ट होकर, काव्य में या आश्रय में उसी प्रकार प्रतीत लाल्या पशरति स्थायी भाव के अभेद, साधारण से व्यक्त होकर वात्सल्य भक्ति रस कहलाता है।"

वात्सल्य रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है:–

"यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलराई मल्हावै, जोई सोई कछु गावै।।
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आव सुवावै।
तू काहे नहिं बेगहि आवै, तो कौ कान्ह बुलावै।।
कबहु पलक हरि मूद लेत है, कबहु अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है के रहि, करि करि सैन बतावै।।
इतिह अंतर अकुलाई उठे हरि, जसमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर–मुनि दुर्लभ, सी नंदमामिनि पावै।"

स्पष्टीकरण

यहाँ बालकृष्ण लाल्यापशरति के आलम्बन विभाव है। पलक मूंद लेना आदि क्रियाएँ आलम्बनगत उद्दीपन विभाव है। पालना आदि आलंबन बहिर्मूर्ति उद्दीपन विभाव है। आश्रयरूप काव्यपात्र यशोदा का झुलाना आदि क्रियाएत्र अनुभाव हैं जिनसे व्यंजित हर्षादि संचारी भावों के माध्यम से पुष्ट, सहृदय भक्तों के हृदय का संस्कारवस्थित लाल्यापशरति नामक स्थायी भाव, काव्य यशोदा रूप आश्रय से उसी प्रकार प्रतीत लाल्यापशरति नामक स्थायी भाव काव्य यशोदा रूप आश्रय में उसी प्रकार प्रतीत लाल्यापशरति के अभेद साधारण से व्यक्त होकर बाल भक्ति रस का उदाहरण बना हुआ है। अतः इन पंक्तियों में वात्सल्य रस है।

7.12 वीर रस

परिभाषा

युद्ध अथवा किसी कठिन कार्य को करने के लिए हृदय में जो उत्साह जागप्त होता है, उससे "वीर रस" की निष्पत्ति होती है। वीर रस का वर्ण स्वर्ण अथवा गौर तथा देवता इन्द्र कहे गये हैं। यह उत्तम प्रकर्षति से सम्बद्ध है।

"अथ वीरो नाम उत्तमप्रकर्षति रूत्साहोत्मकः।"

भावुदत्त के अनुसार

पूर्णतया परिस्फुट 'उत्साह' अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियों का प्रहर्ष या उत्फुल्लता वीर रस है।

"परिपूर्ण उत्साह सर्वेन्द्रियाणां
प्रहर्षो वा वीरः।"

हिन्दी के आचार्य सोमनाथ ने वीर रस की परिभाषा की है:—

"जब कवित में सुनत ही व्यंग्य होय उत्साह।
तहां वीर रस समझियों चौबिद्यि के कबिनाह।"

आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने उत्साह की व्याख्या करते हुए लिखा है:— "जिन कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है, उन सबके प्रति उत्कण्ठापूर्ण आनन्द, उत्साह के अन्तर्गत लिया जाता है। यह उत्साह दान, धर्म, दया, युद्ध आदि किसी भी दोत्र में हो सकता है।"

इस आधार पर चार प्रकार के वीर होते हैं:—

(1) युद्धवीर (2) दानवीर (3) धर्मवीर (4) दयावीर।

उपकरण

स्थायी भाव–उत्साह

आलम्बन विभाव–अत्याचारी शत्रु, दीन, याचक, तीर्थ आदि।

आश्रय–उत्साही व्यक्ति।

उद्दीपन अनुभाव–शत्रु का पराक्रम, अहंकार, रणवाद्य, याचक का आर्तनाद, यश की इच्छा आदि।

अनुभाव–रोमांच, गर्वपूर्ण उक्ति, प्रहार करना, कम्प धर्मानुकूल आचरण आदि।

संचारी भाव–उग्रता, आवेग, गर्व, चपंलता, घषति, मति, स्मषति, हर्ष, उत्सुकता, असूया आदि।

वीर रस का एक उदाहरण दष्टव्य है:—

"सुनहू भानुकूल पंकज भानू। कहउं सुभाव न कहु अभिमानू।।
जो राउर अनुशासन पाऊं। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठाऊं।।
कांचे घट जिमि डारों फोरी। सकी मेरू मूलक इव तौरी।।
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरी पिनाक पुराना।।
तारौं छपाक दण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभुपद षपथ, पुनि न हारौं धनु हाथ।"

स्पष्टीकरण

उदाहरण में धनुष आलम्बन विभाव एवं जनक की 'अंकुचित वाणी' ही उद्दीपन विभाव है। लक्ष्मण की आदेशपूर्ण उक्तियां अनुभाव है। आवेश औत्सुक्त एवं गवोदि यहाँ संचारी भाव है। इन्हीं समस्त उपकरणों से सुसज्जित होकर उत्साह स्थायी यहाँ वीर रस में परिणत होता दीख पड़ता है।

नोटस

7.13 शान्त रस

नोटस

परिभाषा

तत्व–ज्ञान की प्राप्ति अथवा संसार से वैराग्य होने पर षान्त रस की उत्पत्ति होती है। जहाँ न दुःख है न सुख, न द्वेष है, न राग और न कोई इच्छा है, ऐसी मनः स्थिति में उत्पन्न रस को मुनियों ने 'शान्त रस' कहा है।

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में षांत रस की व्यख्या इस प्रकार की है:–

"शान्त रस की प्रकषति उत्तम, स्थायी भाव राम, कुन्देन्दु वर्ण तथा देवता श्री नारायण संसार की अनित्यता, वस्तु जगत की निस्सारता और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान इसके आलम्बन हैं।"

7.14 करूण रस

परिभाषा

किसी भी प्रिय वस्तु, व्यक्ति आदि के अनिष्ट की आशंका अथवा इनके विनाश से उत्पन्न क्षोभ अथवा दुःख की संवेगात्मक स्थिति को "करूण रस" कहा जाता है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से पूर्णतया प्राप्त होने पर 'शोक' नामक स्थायी भाव से करूण रस की उत्पत्ति होती है।

अन्य षब्दों में बन्धु–विनाश, बन्धु वियोग, दव्यनाश और प्रेमी के सदैव के लिए बिछुड जाने से करूण रस उत्पन्न होता है। यद्यपि दुःख का अनुभव वियोग श्रृंगार में भी होता है, तथापि वहाँ मिलने की आशा भी बंधी रहती है। अतएव जहाँ पर मिलने की आशा पूरी तरह समाप्त हो जाती है, वहाँ करूण रस होता है।

इष्ट की हानि अथवा चिरवियोग आदि से जहाँ षोक का विस्तार हो वहाँ करूण रस होता है।

उपकरण

स्थायी भाव–षोक।

आश्रय–षोकातुर व्यक्ति।

आलम्बन विभाव–विनष्ट व्यक्ति अथवा वस्तु।

उद्दीपन अनुभाव–आलम्बन का दाहकर्म, इष्ट के गुण तथा उससे सम्बन्धित वस्तुएँ एवं इष्ट के चित्र का वर्णन।

अनुभाव–भूमि पर गिरना, निःश्वास, छाती पीटना, रूदन, प्रलाप, मूर्छा, दैवनिन्दा, कैम्प अदि ।

संचारी भाव–निर्वेद, मोह, उपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मषति, श्रम, विषाद, जड़ता, दैत्य उन्माद आदि।

करूण रस का एक उदाहरण दश्टव्य है:–

भगवान के पवित्र आश्रय, तीर्थ–स्थान, रम्य, एकान्त वन तथा महापुरूषों का सत्संग उद्दीपन है। अनुभाव रोमांचादि और संचारियों में निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, उन्माद तथा प्राणियों पर दया आदि की गणना की जा सकती है।

उपकरण

स्थायी भाव–निर्वेद या राम।

आलम्बन विभाव–परमात्मा का चिन्तन एवं संसार की क्षणभंगुरता।

उद्दीपन अनुभाव–सत्संग, तीर्थस्थलों की यात्रा, षास्त्रों का अनुशीलन आदि।

अनुभाव–परे षरीर में रोमांच, फुलक, अश्रु आदि।

संचारी भाव–धर्षति, हर्ष, स्मर्षति, मति, विबोध, निर्वेद आदि।

षन्त रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है:–

कबहुँक हौं याहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ–कषालु–कषा ते सन्त सुभाव गहौंगो।।
जथालाभ सन्तोष सदा–काहू सों कछु न चहौंगों।
परीहत–निश्त–निश्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।

–तुलसीदास

स्पष्टीकरण

इस पद में तुलसीदास ने श्री रघुनाथ की कष्पा से सन्त–स्वभाव ग्रहण करने की कामना की है। "संसार से पूर्ण विरक्ति" और निर्वेद स्थायी भाव है। "राम की भक्ति आलम्बन" है। साधु–सम्पर्क एवं श्री रघुनाथ की कष्पा उद्दीपन है। धैर्य, सन्तोष तथा अचिन्ता अनुभाव है। निर्वेद, हर्ष, स्मर्षति आदि संचारी भाव है। इस प्रकार यहाँ इन पंक्तियों में षान्त रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले थे चुम्बन षून्य कपोल,
हाय रूक गया यहीं संसार,
बना सिंदुर अनल अंगार,
वातहत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार!

–सुमित्रानन्दन पन्त

स्पष्टीकरण

इन पंक्तियों में 'विनष्ट पति' आलम्बन तथा "मुकुट का बँधना, हल्दी के हाथ होना, लाज के बोलों का न खुलना" आदि उद्दीपन है। वायु से आहत लतिका के सामने नायिका का बेसहारे पड़े होना अनुभाव है तथा उसमें विषाद, दैव्य, स्मर्षति, जड़ता आदि संचारियों की व्यंजना है। इस प्रकार करूणा के सम्पूर्ण उपकरण और षोक नामक स्थायी भाव इस पद्य को करूण रस दशा तक पहुँचा रहे हैं।

नोटस

7.15 रौद्र रस

परिभाषा

जहाँ विपक्ष द्वारा किए गए अपमान अथवा अपने गुरूजन आदि की निन्दा आदि से क्रोध उत्पन्न होता है, वहाँ "रौद्र रस" होता है।

अन्य शब्दों में– जहाँ विरोध के प्रति प्रतिशोध एवं क्रोध भाव जागृत हो, वहाँ भी रौद्र रस होता है।

उपकरण

स्थायी भाव– क्रोध।

आलम्बन विभाव– विपक्षी, अनुचित बात कहने वाला व्यक्ति।

उद्दीपन अनुभाव– विपक्षियों के कार्य तथा उक्तियाँ।

अनुभाव– मुख लाल होना, दाँत पीसना, आत्म–प्रशंसा, षस्त्र चलाना, भौंहें चढ़ना, कम्प, प्रस्वेद, गर्जन आदि।

संचारी भाव– *आवेद, अमर्ष, उग्रता, उद्वेग, स्मर्षति, असूया, मद, मोह आदि।*

रौद्र रस का एक उदाहरण दश्टव्य है:–

"छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जगु जान।
लातहु मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान।।
बांधि जटा सिर कीस कटि माथा।
साजि सरासनु, सायकु हाथ।।
आजु राम सेवक जपु लेऊं। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।।"

स्पष्टीकरण

प्रस्तुत अवतरण में लक्ष्मण आश्रय है, भरत आलम्बन है तथा ससैन्यागमन ही एक प्रकार से उद्दीपन विभाव का पूरक है। लक्ष्मण के क्रोधयुक्त पुरूष वचन, परिकरबद्ध होकर हाथ में उनका धनुर्वाण धारण करना तथा युद्ध सम्बन्धी उनकी ललकार ही अनुभाव है। अमर्ष उग्रता एवं गर्व आदि यहाँ संचारी भाव है। क्रोध का स्थायी भाव यहाँ समसूपी अभिव्यक्ति में परिव्याप्त दिखाई देता है और उसकी पूर्ण परिपुष्टि से ही यहाँ रौद्र रस का आस्वादन भी सम्भव हो पाया है। "प्रकट करौं रिस पहिल आनू" के द्वारा यहाँ आश्रय की प्रतीक्रियात्मक मनोवृत्ति का भी स्पष्ट पता चलता है, जो रौद्र रस की अपनी विशेषता है।

7.16 भयानक रस

परिभाषा

किसी भयानक अथवा अनिष्टकारी वस्तु या व्यक्ति को देखने, उससे सम्बन्धित वर्णन सुनने, स्मरण करने आदि से चित में जो व्याकुलता उत्पन्न होती है, उसे भय कहते हैं। इस भय के जागष्त और उद्दीप्त होने पर जिस रस की निष्पत्ति होती है, उसे भयानक रस कहते हैं।

जहाँ भय स्थायी भाव विभाव, अनुभाव एवं संचारियों के संयोग से पुष्ट एवं विकसित होता है, वहाँ भयानक रस की निष्पत्ति होती है।

उपकरण

स्थायी भाव– भय।

आश्रय– भयभीत व्यक्ति।

आलम्बन विभाव– बाघ, चोर, सर्प षून्य स्थान, भयंकर वस्तु का दर्शन आदि।

उद्दीपन अनुभाव– भयानक वस्तु का स्वर, भयंकर स्वर आदि का डरावनापन एवं भयंकर चेष्टाएँ।

अनुभाव– कम्पन्न, पसीना छूटना, मुँह सूखना, चिन्ता होना, रोमांच, मूर्च्छा, पलायन, रूदन आदि।

संचारी भाव– दैन्य, सम्भ्रम, चिन्ता, सम्मोह, त्रास आदि।

भयानक रस का एक उदाहरण दश्टव्य है:–

"एक ओर अजगरहि लखि
एक ओर मगराय।
बिकल बटोही बीच ही
परयो मूर्च्छा खाय।।"

स्पष्टीकरण

यहाँ मार्ग में जाने वाले बटोही का भय स्थायी भाव है। अजगर एवं सिंह आलम्बन हैं। अजगर और सिंह का दोनों से उद्दीपन है। पथिक का विकल या मूर्च्छित हो जाना अनुभाव है। 'त्रास, दैन्य भय, अपस्मार' आदि संचारी भाव हैं।

इस प्रकार इस दोहे में भयानक रस की पूर्ण सामग्री विद्यमान है।

7.17 वीभत्स रस

परिभाषा

जहाँ घष्य वस्तुओं के श्रवण–दर्शन से हृदय के आकुअन होता है, वहाँ 'जुगुप्सा' के हृदयगत विकास एवं विस्तार से वीभत्स रस की निष्पत्ति होती है।

अन्य षब्दों में– घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा उनके सम्बन्ध में सुनकर उत्पन्न होने वाली घृणा या ग्लानि 'वीभत्स रस' की पुष्टि करती है। तात्पर्य यह है कि बीभत्स रस के लिए घृणा और जुगुप्सा आवश्यक है।

उपकरण

स्थायी भाव– जुगुप्सा।

आलम्बन विभाव– दुर्गन्धमय मांस, रक्त अस्थि, षमशान आदि।

उद्दीपन अनुभाव– रक्त, माँस का सड़ना, उसमें कीड़े पड़ना, दुर्गन्ध आना, पशुओं का इन्हें नोचना–खसोटना आदि।

नोटस

अनुभाव– नाक को टेढ़ा करना, मुँह बनाना, थूकना, आँखे मींचना, घष्णा आदि।

संचारी भाव– षंका, मोह, चिन्ता, वैवर्ण्य, ग्लानि, आवेग, जड़ता, व्यौध आदि।

वीभत्स रस का एक उदाहरण दष्टव्य है:–

"सिर पर बैठो काग, आँखि दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनँद उर धारत।।
गिद्ध जाघँ कह खोदि–खोदि के मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि–काटि के खान बिचारत।।
बहु चील्ह नोंचि ले जात, तुच, मोद मढ़यों सबको हियो।
जनु ब्रह्म–भोज जिजमान कोउ, आज भिखारिन कहुँ दियो।।"

स्पष्टीकरण

यह षमशान का दृश्य है। पशु–पक्षियों की क्रीड़ाओं को देखकर चाण्डाल–सेवारत राजा हरिश्चन्द्र के मंच में जो 'घृणा' पैदा हो रही है वह स्थायी है। षवों की हड्डी, त्वचा आदि' आलम्बन विभाव है। "कौओं का आँख निकालना, सियार का जीभ को खींचना, गिद्ध का जांघ खोद–खोदकर मांच नोचना तथा कुत्तों का उँगलियों को काटना" उद्दीपन है। राजा हरिश्चन्द्र द्वारा इनका वर्णन अनुभाव है। 'मोह, स्मृति आदि' संचारी भाव है। इस प्रकार यहाँ वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है।

7.18 अद्‌भुत रस

परिभाषा

"विचित्र अथवा आश्चर्यजनक वस्तुओं को देख कर हृदय में विस्मय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं भावों के विकसित रूप को "अद्‌भुत रस" कहा जाता है।"

किसी विचित्र वस्तु को देखने या सुनने से जब विस्मय स्थायी भाव का परिपोषण हो तब अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है।

उपकरण

1. **स्थायी भाव**:– विस्मय, आश्चर्य।
2. **आश्रय**:– विस्मित व्यक्ति।
3. **आलम्बन विभाव**:– आश्चर्य उत्पन्न करने वाला पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति, या विचित्र दष्श्य अलौकिक घटना।

4. **उद्दीपन अनुभावः**– अलौकिक वस्तुओं का दर्शन, वस्तुओं की विलक्षणता, श्रवण कीर्तन है।
5. **अनुभावः**– दाँतों तले उँगली दबाना, आँखे फाड़कर देखना, रोमांच, आँसू आना, काँपना, गदगद होना आदि।
6. **संचारी भावः**– उत्सुकता, आवेग, भ्रान्ति, घर्षति, हर्ष, मोह आदि।

अद्भुत रस का एक उदाहरण दष्टव्य हैः–

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोरि कि आन बिसेखा।

देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।।

देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड।

रोम–रोम प्रति लागे, कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड।।

–तुलसीदास

स्पष्टीकरण

बालक राम को एक साथ ही दो स्थानों पर देखकर 'माता कौशल्या के मन में उत्पन्न होने वाला आश्चर्य' स्थायी भाव है। यहाँ राम आलम्बन है। 'राम का एक साथ दो स्थानों पर दिखाई देना तथा उनका अखण्ड रूप' उद्दीपन है। 'कौशल्या का पुलकित होना, वचन न निकलना तथा आँखें बन्द करके राम के चरणों में 'सिर झुकाना' अनुभाव है। भ्रान्ति, त्रास, वितर्क आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार इन पंक्तियों में अद्भुत रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

7.19 हास्य रस

परिभाषा

वेशभूषा, वाणी, चेष्टा आदि की विकषति को देखकर हृदय में विनोद का जो भाव जागष्त होता है उसे 'हास' कहा जाता है। यही 'हास' विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव से पुष्ट होकर 'हास्य रस' में परिणत हो जाता है।

विलक्षण विषय द्वारा जहाँ हास का विस्तार एवं पोषण हो, वहाँ हास्य रस होता है।

उपकरण

1. **स्थायी भावः– हास।**
2. **आश्रयः– दर्शक।**
3. **आलम्बन विभावः– विचित्र आकशति अथवा वेश–भूषा वाले व्यक्ति, हँसोड़े या मूर्ख व्यक्ति, विकश्त वचन वाले व्यक्ति, आकार एवं चेष्टाएँ।**
4. **उद्दीपन अनुभावः– आलम्बन की हास्यपद चेष्टाएँ, उसके बोलने का अनोखा**

ढंग या उसकी निराली वेश–भूषा।

5. अनुभावः– आँखों का मिचना, पेट का हिलना, गाल एवं होठों का खिलना।

6. संचारी भावः– हर्ष, आलस्य, निद्रा, चपलता, कम्पन, उत्सुकता आदि।

नोटस

हास्य रस का एक उदाहरण दष्टव्य है:–

विन्ध्य के बासी उदासी तपो ब्रतधारि
महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा।
सुनि भे मुनिबष्न्द सुखारे।।
हैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद
मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू! करूना
करि कानने को पगु धारे।।

–तुलसीदास

स्पष्टीकरण

इस छन्द में स्थायी भाव हास है। रामचन्द्र जी आलम्बन है। गौतम की स्त्री का उद्धार उद्दीपन है। "मुनियों की कथा सुनना अनुभाव" है तथा हर्ष, उत्सुकता, चंचलता आदि संचारी भाव हैं। इनमें हास्य रस का आश्रय पाठक है तथा आलम्बन है– विन्ध्य के उदास वासी।

खंड

8
रीति

पाठ का प्रारूप

8.1 रीति सम्बन्धी विभिन्नप काव्यशास्त्रियों के मत
8.2 आचार्य वामन ने
8.3 रीति की परिभाषा
8.4 आचार्य वामन के अनुसार रीति की परिभाषा–
8.5 आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार रीति की परिभाषा
8.6 आनन्दवर्धन और वामन की रीति परिभाषा एक तुलना
8.7 आनन्दवर्धन की रीति विवेचना
8.8 भोज की रीति की परिभाषा
8.9 आचार्य विश्वनाथ की रीति विषयक परिभाषा
8.10 राजशेखर की रीति की परिभाषा
8.11 रीतिरात्मा काव्यस्य
8.12 रीति को काव्य की आत्मा मानने का अभिप्राय
8.13 रीति को काव्य की आत्मा मानने का प्रमाण
8.14 रीति के भेद
8.15 रीति और रस

रीति का व्युत्पव्यार्थ है– गीत चलन, मार्ग पंथ, वीथी आदि। महाराज भोज ने रीति की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायीः–

"वैदर्भीदिकतः पन्था काव्येमार्ग इति स्मष्तः
रीड़वताविति धातौः आ व्युत्पत्या रीतिरूच्यर्ते

अर्थात् वैदर्भीदि मार्ग काव्य मार्ग कहे गये हैं। रीति शब्द की उत्पत्ति रीड़गतौ (चलना) गत्यर्थक रीड़ धातु के किन प्रत्यय के योग से हुई है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ चाल मार्ग पद्धति, प्रणाली, शैली आदि है।

"काव्यशास्त्र में पद–रचना पद्धति को रीति कहा जाता है।" रीति का काव्य की आत्मा बताने का श्रेय

आचार्यर्य वामन को है:–

रीति रात्माकात्यस्य उन्होंने कहा है कि पदों की विशिष्ट रचना को ही रीति कहते हैं:–

"विशिष्टा पद रचना रीतिः।"

किन्तु इसके साथ में उन्होंने यह भी कहा कि पदों से यह विशेषता उत्पन्न करने का श्रेय गुणों का ही है।

"विशेषोगुणात्मा"

इसलिए रीति सम्प्रदाय को गुण सम्प्रदाय भी मानते हैं। काव्यशास्त्र में इसका व्यवहत अर्थ विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति पद्धति के अर्थ में रहा है और यही हिन्दी में आज शैली हो गया है। अंग्रेजी मं इसे स्टाइल कहते हैं:–

8.1 रीति सम्बन्धी विभिन्नप काव्यशास्त्रियों के मत

रीति–मत के प्रधान प्रतिपादक आचार्य वामन हैं। उन्होंने रीति को एक सिद्धान्त के रूप में निरूपण किया और इसे काव्य की आत्मा माना है, किन्तु इससे पूर्व रीति शब्द का प्रयोग प्रत्येक काव्याचार्य ने किया है। इसको पहले गुण के रूप में पुकारा जाता रहा था।

गुण का सर्वप्रथम वर्णन करने वाले भरतमुनि हैं। भरतमुनि के अपने नाट्यशास्त्र में श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद सुकुमारता, अर्थ व्यक्ति, उदारता और कान्ति इन दस को काव्यार्थ का गुण बताया है। इन्होंने दस हजार काव्य गुणा का नाट्यशास्त्र में वर्णन किया है। भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट गुणों को दण्डी ने स्वीकार किया है किन्तु उनसे पूर्व भासह ने काव्यालकार में रीति और गौड़ी को महत्व दिया। उन्होंने इस प्रचलित धारणा का खण्डन किया कि वैदयी मार्ग श्रेष्ठ है। वह वक्रोक्ति ही न वैदयी को कोमण, ऋजु प्रसन पदावली से युक्त होने पर भी गेय–मात्र और कर्ण–सुखद मात्र मानते थे। अलंकारवादी होने के कारण ही बिना अलंकारों के उन्होंने रीति का कोई महत्व नहीं माना है। इसीलिए वह गौडिय रचना पर विशेष बल देते हैं।

यथाः–

"अलंकारावदग्राम्यम् अर्थ न्याथ्यमनाकुलम।
गौडियमपि साधीयो वैदर्भमपि च नान्यथा।"

अलंकार युत ग्राम्य दोष से रहित अर्थपुष्टि, औचित्यपूर्ण गौडिय की भी रचना करनी चाहिए। अलंकारादि से युक्त होने पर इन दोनों में कोई भेद नहीं, दोनों ही श्रेष्ठ होती हैं। अलंकारादि के बिना वैदर्भी भी व्यर्थ है।

दण्डी ने रीति के लिए काव्य मार्ग और गिरा मार्ग शब्दों का प्रयोग किया है। दण्डी ने सर्वप्रथम विभिन्न काव्यों की विभिन्न शैलियाँ मानी। उन्होंने वैदर्भी और गौंडीय का उल्लेख तो उनकी प्रसिद्धि के कारण किया। दण्डी ने वैदर्भी को ही कवियों के लिए उपयोगी बताया है। दण्डी की गुण–कल्पना व्यापक हैद्ध उन्होंने मधुर रसवत कहकर गुण के साथ इसकी रीति में समाविष्ट कर लिया।

वामन ने सर्वप्रथम रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया और रीतिरात्मा काव्यस्य की विवेचन करने के पश्चात् रीति तत्वों का विस्तृत विवेचन किया। उन्होंने गुणों को रीति का प्राण माना– विशेषीगणात्मा। अतः उनके अनुसार एक प्रकार से गुण ही रीति की आत्मा हुए। यद्यपि आचार्य वामन ने भी इन दसों को माना तो है किन्तु उन्होंने इन दस गुणों को दो प्रकार का बताया है– (शब्दगत और अर्थगत)। गुणों के

अन्तर्गत उन्होंने रस अलंकार आदि का समावेश कर दिया। उन्होंने प्रादेशिकता के आधार पर रीति विभाजन का चण्डन करने गुणों के आधार पर वैदर्भी गोड़ी और पांचाली तीन रीतियाँ निर्धारित कीं। उन्होंने भी वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ बताया और गौड़ी को ओज व क्रान्ति गुणों से विभूषित माना। पांचाली को भी माधुर्य और सौकुमार्य दो गुणों से विभूषित माना लेकिन समस्त गुणों से गुम्फित, दोषों से सर्वथा रहित और वीणा के स्वरों जैसे मधुर रीति केवल वैदर्भी को ही माना है–

अस्पृश्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणांगुफिता।

विपचीस्वर सौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यतेकड़।।

इन्होंने यत्र–तत्र इसका भी उल्लेख किया है कि रीति पढ़ने–लिखने अथवा सीखने से नहीं आती है, अपितु वह तो जन्मजात संस्कार से संबंध रखती है। वामन के तीनों शैलियों का परिचय देते हुए कहा है कि जिस शैली में सब शब्द गुण और अर्थ गुण हों वह वैदर्भी जिसमें केवल ओज और क्रान्ति गुण हो वह गौड़ी और जिसमें माधुर्य तथा सौकुमार्य गुण हो उसे पांचाली कहते हैं। इस प्रकार उन्होंने वैदर्भी और गौड़ी के अतिरिक्त तीसरी पांचाली रीति भी मान ली।

रीति सिद्धान्त की समीक्षा– रीति सिद्धान्त में अलंकार सिद्धान्त की उपेक्षा काव्य–सिद्धान्त का विकास विशेष रूप से लक्षित होता है। काव्य के मूल रूप सिद्धान्त ने अधिक मार्मिक से विचार किया है।

इस सिद्धान्त ने गुण और अलंकारों का पारस्परिक पार्थक्य दिखाते हुए गुणों का विशेष प्रश्रय प्रदान किया है। दूसरे रसोविधान का अध्ययन भी इसी सम्प्रदाय के उत्कर्ष से गतिमान हुआ। भामह और दण्डी आदि आलंकारियों ने अलंकारों को काव्य की शोभा का मूलकारक माना था। परन्तु वामन ने रीति को प्रमुखता दी, वह काव्य–चिंतन का स्वाभाविक विकास सिद्ध हुआ। अतः ामन ने इसका रीति के अर्थ में उतर दिया वह वामन की महत्वपूर्ण देन है कि उन्होंने शैली के एक प्रसाधन अलंकार की अपेक्षा समग्र शैली रीति के महत्व की ओर काव्यशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट किया।

किन्तु वामन ने गुणों को अलंकारों से अधिक महत्व दिया है। वे गुण को ही काव्य की शोभा बढ़ाने वाला मानते हैं।

काव्य शोभाया कत्तारौ धर्मा गुणाः

तर्दातशय हेतवस्त्वंलकाराः।

उन्होंने यह भी माना है कि गुण तो काव्य में नित्य रहते हैं बिना उनके काव्य में शोभा ही नहीं उत्पन्न हो सकती। यह गुण युक्त रचना ही काव्य कहलाती है, गुणहीन रचना नहीं।

गुण को उन्होंने स्त्री के यौवन के समान आन्तरिक तत्व माना है और बतलाया है कि 'यदि किसी स्त्री में यौवन न हो तो कंगन, कण्ठहार आदि आभूषण उसकी शोभा नहीं बढ़ा सकते।' अतः अलंकारों को तो कंगन आदि के समान और गुण को यौवन के समान समझना चाहिए।परन्तु इस संदर्भ में उल्लेख यह है कि अलंकारवादियों की तरह रीतिवादी भी भाव–विचार संस्कृति जीवन–दृष्टि आदि पहलुओं को पूर्ण विस्मृत किए रहे। वे भी रीति के इन अंतरंग तत्वों का कोई विनियोग स्थापित नहीं कर सके। रीति का आधार इन्होंने गुणों को माना यह भी ठीक था किन्तु उनकी दृष्टि परम्परागत दस गुणों तक ही सीमित रही और वे इन गुणों का भी कोई व्यावहारिक विवेचन नहीं कर सके।

फिर शैली का सम्बन्ध कविता से ही नहीं अपितु गद्य से भी है और गद्य की दृष्टि से इन आचार्यों ने रीति का कोई विचार नहीं किया। अतः उसका रीति–वर्णन अपूर्ण ही रहा। वस्तुतः रीति का सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से नहीं जुड़ सका। दण्डी, मुक्तल आदि आचार्यों ने रीति का आधार कवि स्वभाव बताया अवश्य, पर वे भी व्यावहारिक रूप में रीति और कवि व्यक्तित्व या स्वभाव का सम्बन्ध सिद्ध नहीं कर सके। इस प्रकार रीति का सम्बन्ध अधिकतर पद रचना से ही रहा है।

8.2 आचार्य वामन ने

रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। परन्तु रीति को काव्य की आत्मा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रीति का अनुभूति पक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह काव्य का शरीर मात्र है। लेकिन हा, से आत्मा का पूरक अथवा एक दूसरे की अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य कहा जा सकता है। क्योंकि जैसे काव्य की आत्मा रस बिना अभिव्यक्ति रीति का अस्तित्व ग्रहण नहीं कर सकती, उसी प्रकार आत्मा के बिना रीति का भी कोई अस्तित्व नहीं है, अतः दोनों परस्पर अन्योन्यादित हैं। अतः इसे काव्य की सम्प्रेणीयता का माध्यम भी कहा जा सकता है।

समग्रतः रीति सामान्य अभिव्यंजना पद्धति की द्योतक है।

8.3 रीति की परिभाषा

रीति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आचार्य वामन ने किया। उनसे पूर्व दण्डी ने उनके पश्चात् कुन्तक ने रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया। वामन से पूर्व भामह एवं दण्डी ने रीति की चर्चा की है। लकिन उनमें से किसी ने रीति की परिभाषा या लक्षण नहीं दिया यह कार्य आचार्य वामन ने किया।

8.4 आचार्य वामन के अनुसार रीति की परिभाषा–

"विशिष्टापद–रचना रीतिः

विशेषों गुणात्मा।"

अर्थात् विशिष्ट पद–रचना रीति है। विशिष्ट का अर्थ है– गुणसम्बन्ध। विशेषों गुणात्मका गुणज का अर्थ है काव्य की शोभा का एक धर्म। अर्थात् शब्द–अर्थ के वे धर्म जो काव्य की शोभा सम्पन्न करते हैं गुण कहलाते हैं। वे हैं ओज प्रसादादि– इस प्रकार "ओज प्रसादादि, गुणों से युक्त पद–रचना रीति है।"

8.5 आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार रीति की परिभाषा

टानंदवर्धन ने रीत को 'संघटना' नाम दिया। उनके अनुसार सम्यक् अर्थात् यथोचित पद रचना का नाम संघटना अथवा रीति है।

8.6 आनन्दवर्धन और वामन की रीति परिभाषा एक तुलना

वामन ने रीति की परिभाषा देते हुए पद–रचना के पूर्व विशिष्ट (शब्द और अर्थगत सौंदर्य से युक्त) विशेषण का प्रयोग किया है और आनंदवर्धन ने सम्यक् का। इस प्रकार वामन ने शब्द और अर्थगत् सौन्दर्य को काव्य का चरम मान समझा है। लेकिन वर्धन ने सम्यक् विशेषण के द्वारा रस की महत्ता को प्रमुखता दी है।

अतः आनन्दवर्धन के अनुसार रीति रसादायी है। अतः उन्होंने पद–रचना के लिए सम्यक–विशेषण का प्रयोग किया। लेकिन पद–रचना का वैशिष्ट्य अपने शब्द और अर्थगत् सौंदर्य से अभिन्न है। इस प्रकार

आनन्दवर्धन के अनुसार रीति–रूप सौन्दर्य का साधन है जबकि वामन के अनुसार रीति स्वयं सौन्दर्य है अर्थात् साध्य है।

8.7 आनन्दवर्धन की रीति विवेचना

आनन्दवर्धन ने अपने मत को व्याख्यान करते हुए लिखा है– संघटना तीन प्रकार की कही गई है– असमानसा, मध्यसमासा तथा दीर्घ समासा। वह माधुर्यादिगुणों के आश्रय से स्थित रसों की अभिव्यक्ति करती है। निष्कर्षतः उनकी रीति विषयक मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:–

(1) रीति या संघाटना का आधार समास है।

रीति की स्थिति गुणों के आश्रय से है।

रीति रसाभिव्यक्ति का साधन है।

8.8 भोज की रीति की परिभाषा

भोज ने रीति मार्ग या पंथ तीनों को पर्याय सिद्ध करते हुए इनकी अभिन्नता प्रतिपादित की। उनके अनुसार रीति का अर्थ है कवि–गमन–मार्ग जिसे कुन्तक ने कवि प्रस्थान हेतु कहा है।

8.9 आचार्य विश्वनाथ की रीति विषयक परिभाषा

पदों का संगठन या मेल ही रीति है। यह अंग संस्थान की भांति है। जिस प्रकार शरीर के अंगों का सुगठन होता है वैसे ही काव्य–शरीर में शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है। यह रीति काव्यात्मभूत रस–भाव आदि की उपकारक होती है।

8.10 राजशेखर की रीति की परिभाषा

"वचन–विन्यास क्रमों रीतिः।"

अर्थात् वचन–विन्यास का क्रम रीति है। यह परिभाषा वामन से भिन्न नहीं, केवल शब्दों का अंतर है। वचन का अर्थ है– शब्द या पद तथा विन्यास–क्रम का अर्थ है– रचना।

8.11 रीतिरात्मा काव्यस्य

'रीति सम्प्रदाय' के प्रधान आचार्य वामन माने जाते हैं। यद्यपि इनके पूर्व आचार्य दण्डी ने भी काव्य के रीति तत्व पर प्रकाश डाला है, तथापि इस तत्व का व्यापक विवेचन सर्वप्रथम हमें वामन के काव्यालकार–सूत्र वृत्ति से ही मिलता है। अतः इन्हें इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा का श्रेय दिया जा सकता है। जिस प्रकार रस सम्प्रदाय के आचार्यों ने रस को और अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों ने अलंकार को काव्य की आत्मा माना, उसी प्रकार रीति सम्प्रदाय के उन्नायकों ने रस या अलंकार को प्रधानता न देकर रीति को ही काव्य की

आत्मा होने की घोषणा की है और अपनी इस मान्यता को अनेक तर्कों और प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने "रीतिरात्मा काव्यस्य" की घोषणा करके तत्कालीन काव्यशास्त्रियों का ध्यान काव्यशास्त्र विषयक प्राचीन मान्यताओं पर पुनः विचार करने की ओर आकर्षित किया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रीति वह विशिष्ट पद–रचना (प्रणाली) है जिसमें काव्योचित गुणों की स्थिति अनिवार्य रूप में होती है।

8.12 रीति को काव्य की आत्मा मानने का अभिप्राय

"रीति विशिष्ट प्रकार की उक्ति या पद–संघटना है, जो कवि या वक्ता की प्रतिभा से उत्पन्न होती है, व्युत्पत्ति से विकसित होती है तथा अभ्यास से सिद्ध होती है जो वाच्य और वाचक के सौभाग्य तथा लावण्य–पोषक औचित्य से अनुप्रमाणित होकर गुणों के आश्रय से खड़ी होती हुई रस अथवा भाव को अभिव्यक्त करती है। जिसमें भाषा वस्तुनिष्ठ से अधिक व्यक्तिनिष्ठ होती है; जिसमें अनुभूति को आनन्दात्मक रूप में घोषित करने की क्षमता रहती है। जहाँ शब्द और अर्थ दोनों को समान रूप से घोषित करने की क्षमता रहती है, पदार्थों के महत्व की उत्कर्षता अलंकारों के प्रयोग की अनुकूलता से सुशोभित रहती है। लोकोतीर्णता जिसका स्वभाव है, सौन्दर्य–पुष्टि जिसका लक्ष्य है, भावानुकूलता जिसका कारण है तथा सत्वमय आनन्द की अखण्ड अनुभूति करना जिसका कर्तव्य है। रीति शब्दाश्रित गुणों को ही नहीं ध ारण करती, अपितु अर्थाश्रित गुणों को भी धारण करती है।"रीति का सम्बन्ध पद, गुण, अलंकार से नहीं, वरन काव्य के अन्य तत्व–वृत्ति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य रस आदि से भी है।" रीति से वर्ण्य का ज्ञान ही नहीं होता वरन् उसकी रसात्मक अनुभूति भी होती है, इससे विषय का बोध ही नहीं होता वरन् कवि के व्यक्तित्व की भी पहचान होती है। यह कवि की भावात्मक स्थिति से अनुशासित होती है, विषय तथा काव्य रूप से नियंत्रित होती है तथा युग की संस्कृति, परिस्थिति, विशेषता तथा आवश्यकता के अनुसार अपनाप रूप संवारती है। कवि व्यक्तित्व के भेद के अनुसार रीतियों की संख्या असीमित है।"

8.13 रीति को काव्य की आत्मा मानने का प्रमाण

जब आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा था तब उनका अभिप्राय यह था कि वे विशिष्ट–पद रचना से लेकर विशेषोगुणपात्मा तक की स्थिति को रीति में शामिल कर रहे थे।

आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा प्रमाणित करते समय निम्नांकित महत्वपूर्ण बातें कहीं–

(1) रीति विशिष्ट पद–रचना का समूह है, अतः काव्य की आत्मा है।

(1) रीति की विशिष्टता गुणों के आश्रित है।

(2) वामन ने रीति को गुणों के आश्रित बतलाते हुए गुण को शब्द और अर्थ के आश्रित माना है।

(3) वामन के अर्थ–गुणों के मूल में रस, ध्वनि, अर्थालंकार और शब्दशक्ति के भावात्मक सौन्दर्य का और दोषाभाव के कारण अभावात्मक सौन्दर्य का समावेश हुआ है।

(4) वामन रीति को शब्द और अर्थ के आश्रित मानकर रस और ध्वनि का समावेश करते हुए हुए ही उस काव्य की आत्मा स्वीकार करते थे। इसी आधार पर उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना।

आचार्य दण्डी ने गुण एवं रीति को अभिन्न माना है। आचार्य वामन ने इस सम्बन्ध को 'रीति को गुणमयी रचना' कहकर और भी दृढ़ कर दिया है।

8.14 रीति के भेद

रीति तीन प्रकार की मानी गई हैं। कुछ विद्वान रीति को चार प्रकार की और छः प्रकार की और कुछ आठ प्रकार की मानते हैं। प्रमुख रूप से रीति के तीन ही भेद हैं-- वैदर्भी, गौडी और पांचाली। इन तीनों का विवेचन क्रमशः अग्रलिखित है:-

वैदर्भी रीति

समासविहीनता, माधुर्य--सौकुमार्य आदि समस्त प्रमुख गुणों से पूर्ण श्रुति माधुर्य, स्थानानुप्रास, सुकुमार बन्ध तथा अनुपचार वृत्ति जिस रीति में हो, वह वैदर्भी रीति कहलाती है।

सरस्वती--कण्ठाभरणकार भेजराज ने इस रीति का स्वरूप--निर्देशन करते हुए लिखा है

"माधुर्य व्यंजकैर्वर्ण रचना ललितात्मिका।
अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।"

इन पंक्तियों के अनुसार माधुर्यभिव्यंजक वर्णना, लालित्य और अल्प अथवा समास हीनता वैदर्भी रीति के लक्षण हैं। इस परिभाषा से प्रथम परिभाषा अधिक व्यापक है। इसमें जो तीन प्रमुख लक्षण-- मधुर, वर्ण व्यंजना, लालित्य और समास हीनता बतलाए हैं; वे प्रथम परिभाषा के समास विहीनता, माधुर्य तथा सुकुमार--बन्ध के अन्तर्गत आ जाते हैं। अन्य आचार्यों द्वारा उल्लेखित वैदर्भी के लक्षणों का समावेश भी उपर्युक्त प्रथम परिभाषा में हो जाता है। इस सर्वमान्य और बहुप्रशासित रीति का एक उदाहरण देखिए--

"रूनिजत भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मन्द मन्द आवत चल्यौ कुठर समीर।"

बिहारी के इस दोहे में सामासिकता का सर्वथा अभाव है, आरम्भ से अन्त तक माधुर्य--अभिव्यंजक वर्णों की संघटना दर्शनीय है। पंचम वर्णों के प्रयोग ने इन काव्यपंक्तियों में श्रुति--मधुर संगीतात्मकता एवं लालित्य ला लिया है। स्थानानुप्रास की घटा सुकुमार--बन्ध के साथ सहज ही मन मोह लेती है। बिहारी का कुंअर--समीर एक--एक षब्द और वर्ण के साथ ही मतावली चाल से (मन्द--मन्द आवत चल्यौं हाथी की घंटावली के समान भृंगो की षब्द ध्वनि का संगीत ध्वनित (रूनित)) करता कुरू में प्रवेश पा रहा है। कवि की इस मनोमुग्धकारी कल्पना, वर्णोविन्यास, अलंकार--योजना, पद--लालित्य और माधुर्य पर रीझकर कौन वाह! वाह! नहीं कर उठेगा? वैदर्भी रीति की यही तो वह विशेषता है, जिसने रीति को काव्य की आत्मा न मानने वालों को भी इसकी प्रशंसा करने को विवश कर दिया।

गौडी रीति

यह ओज गुण पर आधारित अवलम्बित रहती है। वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रस वर्णन में इसका आश्रय लिया जाता है। वामन ने इसका लक्षण ओज कान्तिमयी गौड़िया कहकर दिया है, अर्थात् इसमें ओज और कान्तिगुण की प्रधानता रहती है। यह चितवृत्ति में उद्वेग उत्पन्न करने वाली होती है। गौड़ (बंगाल देश के कवि अलंकरयुक्त षब्दाडम्बर संयुक्त बन्ध की प्रगाढ़ता से युक्त काव्य--रचना किया करते थे। उन्हीं के नाम पर इसने अपनी संज्ञा पाई।) समग्र रूप से देखने पर इसमें ये विशेषताएँ मिलती हैं:-

1. औज गुण की प्रधानता।
2 अलंकार बाहुल्य।

3 षब्दाडम्बर एवं संयुक्ताक्षरों की बाहुल्यता।

4. प्रगाढ़ बन्धन अथवा कठिन गुंफन।

5. कठोर वर्णों का प्रयोग।

6. दीर्घ समासों की प्रधानता।

7 विकट रचना कौशल।

8. वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों की सषष्टि।

9. ध्वन्यात्मकमा एवं

10. दिव्य एवं संयुक्त वर्णों का प्रयोग।

वीर रस के ओतप्रोत काव्य में इस रीति के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। श्री श्यामनारायण पाण्डेय रचित हल्दीघाटी काव्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है:–

"लहरात थी सिर काट–काट,
बलखाती थी भू पाट–पाट,
बिखराती थी अवयव बाट–बाट,
तनती थी लोक चाट–चाट।।
श्रण भर में गिरते खण्डों से,
मदमस्त गजों के झुण्डों से
घोड़ों के विकल वितुण्डों से,
पट गई भूमि नर मुण्डों से।।"

पांचाली रीति

यह वैदर्भी और गौड़ी के मध्य की रीति है। कुछ आचार्यो ने इसे मध्यम नाम से भी सम्बोधित किया है। यह मन्द–वाहिनी सरिता की तरह प्रवाहित होती है अर्थात् दीर्घ–समास, पादानुप्रास, अनतिस्फुट–बन्धन तथा ओज और क्रान्ति गुण समन्वित इसके मुख्य लक्षण हैं। इसमें सुकुमार वर्णों की प्रचुरता हाती है।

सरस्वती–कण्ठाभरणकर भोज ने लिखा है:–

"समस्त पंचषपदाभोजः कान्ति विर्वाजिताम्
मधुरां सुकुमारां च पांचाली कवयों बिदुः।।"

भोज के कथन के अनुसार भी माधुर्य, सौकुमार्य तथा कान्ति इस रीति के अन्तर्मूत गुण हैं।

उदाहरणार्थ, यं पंक्तियाँ देखिए:–

"अनियारे दीरघ नयनि, किंतो न तरूनि समान।
बै नैना और कछु, जिहि बस हति सुजान।"

8.15 रीति और रस

भामह आदि अलंकारियों ने रस को काव्य का बहिरंग साधक माना है, किन्तु वामन ने उसे काव्य का सात्विक धर्म बताया है और कहा है कि रस का चमकना ही कान्ति है।

"दीघ रसत्वं कान्तिः"

इस अर्थ में– डॉ० नगेन्द्र के अभिमत से–

"वही अर्थ रमणीय होता है, हमारी बोधवृत्ति के साथ–साथ चितवृत्ति को भी प्रभावित करें और परिमाणतः वही शब्द रमणीय होता है जिसके द्वारा अर्थ–बोध के साथ–साझा भाव का उद्बोध भी हो। अतः शब्दार्थ और उसके विन्यास की चारूता का आधार भाव ही है।"

नोटस

खंड

9
ध्वनि

पाठ का प्रारूप

9.1 ध्वनि–सम्प्रदाय का जन्म
9.2 ध्वनि–सिद्धान्त की स्थापना
9.3 ध्वन्यालोक एक युग प्रवर्तक ग्रन्थ
9.4 ध्वनि का आधार और स्वरूप
9.5 ध्वनि का स्वरूप और उसकी परिभाषा
9.6 ध्वनि के भेद
9.7 अविवाक्षित वाच्य ध्वनि या लक्षणा मूलाध्वनिः–
9.8 अर्थान्तर संक्रमित अविवाक्षित वाच्य–ध्वनि
9.9 अत्यन्त तिरस्कृत अविवाक्षित वाच्य ध्वनि
9.10 आमूला या विवक्षितान्य पर वाच्य–ध्वनि
9.11 संलक्ष्यक्रम व्यंग्य–ध्वनि
9.12 शब्दशक्ति
9.13 अर्थाद्भव अनुरणन–ध्वनि
9.14 कवि–प्रौढ़ोक्ति सिद्ध पदगत वस्तु से वस्तु–ध्वनि
9.15 भावशांति
9.16 भाव–सबलता
9.17 ध्वनि–काव्य
9.18 चित्र काव्य
9.19 ध्वनि विरोधी आचार्य

भारतीय साहित्य में काव्य का प्रधान गुण 'ध्वनि' माना गया है और ध्वनि सम्प्रदाय ही ऐसा समीक्षा सम्प्रदाय है जो रस सम्प्रदाय की ..... में टिका हुआ है। ध्वनि–सिद्धान्त के विकास और ध्वनि सिद्धान्त के स्वरूप का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है:–

9.1 ध्वनि–सम्प्रदाय का जन्म

अन्य सम्प्रदायों की भांति ध्वनि–सम्प्रदाय का जन्म भी उसके प्रतिष्ठापक अथवा प्रतिष्ठापक हय के जन्म से बहुत पूर्व ही हुआ था। स्वयं ध्वनिकार ने ही अपने पहले छन्द में इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है–

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधार्यः

समामान्तः" अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है ऐसे मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत है वास्तव में इस सिद्धान्त के मूल संकेत उनके समय से बहुत पहले वैयाकरणों के सूत्रों में विस्फोट आदि के विवेचन से मिलता है। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शन में भी व्यंजना एवं अभिव्यक्ति (दीपक से घर) की चर्चा बहुत प्राचीन है।

ध्वनिकार से पूर्व रस, अलंकार और रीतिवादी आचार्य अपने–अपने सिद्धान्तों की पुष्ट प्रतिपादन कर चुके थे और यद्यपि वे ध्वनि–सिद्धान्त से पूर्णतया परिचित नहीं थे, परन्तु फिर भी आनन्दवर्धन का कहना है कि कम से कम उनके सीमांत तक अवश्य पहुँच गये थे। अभिनव गुप्त ने पूर्ववर्ती आचार्यों में उद्‌भट और वामन को साक्षी रूप माना है। उद्‌भट का ग्रन्थ 'भामह–विवरण' आज उपलब्ध नहीं है अतएव हमें सबसे प्रथम ध्वनि संकेत वामन के 'वक्रोक्ति विवेचन' में ही मिलता है– "सादृश्याल्लक्षण वक्रोक्ति"। लक्षणा में जहाँ सादृश्य गर्भित होता है, वहाँ वह वक्रोक्ति कहलाती है। सादृश्य की यह व्यंजना ध्वनि के अन्तर्गत आती है। इसलिए वामन को साक्षी माना गया है।

9.2 ध्वनि–सिद्धान्त की स्थापना

विद्वानों का मत है कि 9वीं शताब्दी के मध्य में 'ध्वन्यालोक' की रचना हुई है। 'ध्वन्यालोक' एक ही लेखक आनन्दवर्धन की कृति है अथवा आनन्दवर्धन केवल कृतिकार थे, कारिका उनके पूर्ववर्ती या समसामयिक किसी अन्य आचार्यों ने रची है, इसी विषय पर पण्डितों के विभिन्न मत हैं। डॉ० कुहलर और उनके अनुसारण पर डॉ० डे तथा प्रोफेसर कर्ण आदि का मत है कि मूल ध्वनिकार और कृतिकार आनन्दवर्धन दो भिन्न व्यक्ति थे। उधर डॉ० शंकरन ने अनेक प्रकार के अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर संस्कृत आचार्यों की मान्यता को स्वीकार करते हुए दोनों को एक माना है।

9.3 ध्वन्यालोक एक युग प्रवर्तक ग्रन्थ

'ध्वन्यालोक' एक युग प्रवर्तक ग्रन्थ था। उसके रचियता ने अपनी असाधारण मेधा के बल पर एक ऐसे सार्वभौम सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की जो युग–युग तक सर्वमान्य रहा। अब तक जो सिद्धान्त प्रचलित थे वे प्रायः सभी एकांगी थे। अलंकार और रीति को काव्य के बहिरंग को ही छूकर रह जाते थे रस–सिद्धान्त भी ऐन्द्रिय आनन्द के प्रति उदासीन था इसके अतिरिक्त उसमें दूसरा दोष यह था कि प्रबन्ध–काव्य के साथ तो उसका सम्बन्ध ठीक बैठ जाता था, परन्तु स्फुट छन्दों के विषय, अनुभाव, व्यभिचारी आदि का संघटन सर्वत्र न हो सकने के कारण कठिनाई पड़ती थी और प्रायः अत्यन्त सुन्दर पदों को भी उचित गौरव न मिल पाता था। ध्वनिकार ने इन त्रुटियों को पहचाना और सभी का उचित परिहार करते हुए शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना पर आश्रित ध्वनि को काव्य की आत्मा घोषित किया ध्वनिकार ने अपने सामने दो निश्चित लक्ष्य रखे हैं–

ध्वनि–सिद्धान्त की नियन्ति शब्दों में स्थापना करना तथा यह सिद्ध करना कि पूर्ववर्तो किसी भी सिद्धान्त के अन्तर्गत उसका समाहार नहीं हो सकता। रस, अलंकार, रीति, गुण और दोष विषयक सिद्धान्तों का सम्यक् परीक्षण करते हुए ध्वनि के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित करना और इस प्रकार काव्य को एक सर्वांगपूर्ण सिद्धान्त की रूपरेखा बांधना।

9.4 ध्वनि का आधार और स्वरूप

ध्वनिकार ने अपने सिद्धान्त का आधार वैयाकरणों के स्फोट से ग्रहण किया है। जिसके द्वारा अर्थ का प्रस्फुटन स्फोट है। यह स्फोट शब्द वाक्य और समस्त प्रबन्ध तक का होता है। शब्द स्फोट का उदाहरण लीजिए– गौः शब्द में ग और विसर्ग में तीन वर्णा है– इन तीन–तीन वर्णों के से गौः का अर्थ बोध किसके द्वारा होता है। यदि यह कहें कि प्रत्येक वर्ण के उच्चारण द्वारा तो एक वर्ण ही पर्याप्त होगा। शेष दो व्यर्थ है और यह कहें कि तीनों वर्णों के समुदाय के उच्चारण द्वारा तो यह असम्भाव्य है क्योंकि कोई भी वर्ण ध्वनि दो दाण से अधिक नहीं ठहर सकती अर्थात् विसर्ग तक आते–आते ग् की ध्वनि का लोप हो जायेगा, जिसके कारण तीनों वर्णों के समुदाय की ध्वनि का एक साथ होना सम्भव न8 हो सकेगा।

अतएव अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन के उपरान्त वैयाकरणों ने स्थिर किया कि अर्थबोध शब्द में स्फोट द्वारा होता है– अर्थात् पूर्ण वर्णों के संस्कार अन्तिम वर्ण के उच्चारण के साथ संयुक्त होकर शब्द का अर्थबाध कराते हैं, यही स्फोट है, जिसका दूसरा नाम 'ध्वनि' भी है। जिस प्रकार पृथक–पृथक वर्णों की आवाज सुनकर भी अर्थबोध नहीं होता वह केवल स्फोट या ध्वनि के द्वारा ही होता है। इसी तरह शब्दों का वाच्यार्थ ग्रहण करने भी काव्य के सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता– वह केवल व्यंग्यार्थ या ध्वनि द्वारा ही होता है और व्यंग्यार्थ का बोध शब्द की अभिद्या, लक्षणा से इतर एक तीसरी विशिष्ट शक्ति व्यंजना द्वारा होता है। शब्द–साम्य और व्यापार–साम्य के आधार पर इस प्रकार स्फोट से प्रेरित होकर ध्वनिकार ने अपने ध्वनि–सिद्धान्त की उद्भावना की। जैसे घण्टे की चोट लगाने से पहले टकार होती है उसमें से मीठी झंकार–ध्वनि निकलती है, उसी प्रकार वाच्यार्थ को टकार और व्यंग्यार्थ को झंकार समझना चाहिए।

9.5 ध्वनि का स्वरूप और उसकी परिभाषा

जहाँ प्रत्यक्ष (वाच्य) अर्थ में से कोई दूसरा ही सुन्दर अर्थ निकले और वह नया अर्थ उसके प्रत्यक्ष या वाच्य अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कार पूर्ण हो वही ध्वनि है और इस प्रकार के ध्वन्यर्थों से भरा हुआ काव्य ही ध्वनि काव्य कहलाता है, जिसे मम्मट ने सर्वश्रेष्ठ प्रकार का काव्य बतलाया हैः–

"इदमुतममतिशयिनि व्यंग्येवाच्याद
ध्वनि वुधैः कथित।"

ध्वनिशास्त्र में 'ध्वनि' शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित तीन प्रकार से की गई हैः–ध्वनि इति अर्थात् जो व्यंग्य अर्थ को प्रकाशित करता है, ध्वन्ते इति, अर्थात् वह अर्थ जो व्यंजित होता है ध्वनम् इति अर्थात् शब्द और अर्था का वह व्यापार, जिससे व्यंग्य अर्थ की प्रतीति होती है। इस विविध के आधार पर 'ध्वनि' का व्यवहार निम्नलिखित पाँच अर्थों में किया गया हैः–

(i) व्यंजक शब्द, ;पपद्ध व्यंजक अर्थ, ;पपपद्ध व्यंजना व्यापार, ;पअद्ध व्यंग्य अर्थ तथा ;अद्ध इन सबका समष्टिगत वह काव्य, जिसमें वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य अधिक चमत्कार पूर्व होता है। ध्वन्यालोक 1/13 पर लोचन में इस प्रकार दिया हैः–

"अर्थो वा शब्दों वा व्यापारों वा। अर्थोअपिवाच्यों वा ध्वनतीति शब्दोइत्येवम्। व्यंग्यों वा ध्वन्यत इति। व्यापारों वा शब्दार्थयोध्वनिनमिति। कारिकया तु प्राधन्येन समदाय एवं काव्यरूपौ पुख्यताया ध्वनिरति प्रतिपादितम्।" आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक (1/13) में ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार की है:–

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसजनोक्ति स्वार्थो।

व्यड्क्तं काव्यविशेषः से ध्वनिरित सूरिभिः कथितः।।"

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके 'उस अर्थ को' प्रकाशित करते हैं, उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है। अपनी प्रस्तुत की गई परिभाशा की व्याख्या आचार्य आनन्द ने निम्नलिखित शब्दों में की है:–

"यत्रार्थो वाच्यविशेषो वाचक विशेषः शब्दों वा तमर्थ

व्यडक्तः स काव्यविशेषो ध्वनिरिति।"

अर्थात् जहाँ विशिष्ट वाच्य रूप अर्थ तथा विशिष्ट वाचक रूप 'उस अर्थ' को प्रकाशित करते हैं, वह काव्य विशेष ध्वनि कहलाता है।

महोजी दीक्षित ने "शब्द कौस्तुम" में स्फोट की व्याख्या करते हुए लिखा है–

"स्फुटत्यर्थोडिस्मादिति स्फोटः"

अर्थात् इससे जो अर्थ फूट निकलता हो उसे स्फोट या ध्वनि कहते हैं।
मञ्जूषा में नागेश ने कौण्डभट्ट के स्फुटत्यर्थो यस्मादिति अर्थात् जिससे अर्थ फूटे इस व्याख्या के अनुसार अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को ही स्फोट रूप माना है।

9.6 ध्वनि के भेद

ध्वनि के आचार्यों ने ध्वनि को तीन भागों में विभक्त किया है:– ;पद्ध रस ध्वनि, ;पपद्ध अलंकार ध्वनि, ;पपपद्ध वस्तु ध्वनि।

(i) **रस ध्वनिः**– रस ध्वनि के अन्तर्गत नवो रसों की तो गणना होती है साथ ही साथ भाव, भावाभास, भवोदय, भावशवलता और भाव–सन्धि की भी गणना होती है।

(ii) **अलंकार ध्वनिः**– अलंकार ध्वनि वहाँ होती है जहाँ व्यक्त किया हुआ शब्दार्थ वर्णनात्मक या इतिवृतात्मक न होकर शुद्ध काल्पनिक हो अर्थात् जो शब्दों में प्रकट किये जाने पर अलंकार का रूप धारण कर लेता हो।

(iii) **वस्तु ध्वनिः**–वस्तु ध्वनि वहाँ होती है जहाँ केवल कोई वास्तविक या यथार्थ बात भर का अर्थ प्रतीत हो।

इन तीनों में "रस ध्वनि" सबसे श्रेष्ठ मानी गई है। जिस समय व्याध ने कोच मिथुन में से एक का वध ा किया और कौंची चीत्कार कर उठी उस समय श्लोक के रूप में वाल्मीकि के मन का जो शोक प्रकट हुआ वही रस ध्वनि है।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगः शाश्वतीः समाः

यत्क्रौंच मिथुनादकेमवधीः काममोहितम्।

इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है फिर भी रस ध्वनि को मुख्य समझकर वे रस को काव्य का प्रधान गुण तत्व मानते हैं।

ध्वनि के मुख्य दो भेद माने गये हैं:

9.7 अविवाक्षित वाच्य ध्वनि या लक्षणा मूलाध्वनि

नोटस

अविवाक्षित वाच्य ध्वनि में वाच्यार्थ की विवक्षा (आवश्यकता) नहीं रहती, वह बाधित हो जाता है अर्थात् इस ध्वनि में वाच्यार्थ अनुपयोगी होने के कारण अविवक्षित–अवांछनीय रहता है, क्योंकि यह लक्षणा पर आधारित रहता है। अतः इसे लक्षणामूला ध्वनि भी कहते हैं। इस ध्वनि में केवल प्रयोजनवती लक्षणा रहती है, रूढ़ा नहीं रहती, क्योंकि रूढ़ा लक्षणा में व्यंग्यार्थ अत्यन्त स्पष्ट होने के कारण महत्वहीन हो जाता है और वह होते हुए भी न होने के बराबर होता है।

अविवाश्रित वाच्य ध्वनि का यह उदाहरण दृष्टव्य है:–

"कौंहर सी ऐड़ीन की लाली देखि सुभाय।
पांच महावर देय को आप भई बेपाई।।"

यहाँ पर 'बेपाइ' शबद के आधार पर यह ध्वनि है। 'बेपाई' शब्द का अभिप्राय नायन का 'पैर रहित हो जाना' या उसके 'पैर कट जाना' वाधित हो जाता है और अन्य अर्थ नयन का आश्चर्य निकलता है जिससे नायिका के पैरों की अप्रितम लालिमा ध्वनित हो रही है। इस ध्वनि का चमत्कार वाच्यार्थ के आधार पर तथा लक्ष्यार्थ के आधार पर होता है। अतः इसके दो प्रमुख अपभेद माने गये हैं:–

(i) अर्थान्तर संक्रमित अविवक्षित वाच्य–ध्वनि तथा

(ii) अत्यन्त तिरस्कृत अविवक्षित वाच्य–ध्वनि।

9.8 अर्थान्तर संक्रमित अविवाक्षित वाच्य–ध्वनि

इस ध्वनि में वाच्यार्थ अपना पूर्ण तिरोभव न करके अपना मूल अर्थ रखते हुए अन्य अर्थ में संक्रमण कर जाता है। यथा–

"घर–घर हिंदुन तुर्कनी देत असीस पराह।
पतिन राख चादर चूरीतेव राखी जयसाहा।"

इस दोहा में पतियों की रक्षा करके, हे जयशाह! आपने उनकी चादर और चूड़ियों की रक्षा कर ली, यह अर्थ रहते हुए भी अन्य अर्थ 'आपने कितनी ही नारियों को विधवा होने से बचा लिया। इस अन्य अर्थ में संक्रमण कर जाता है। इसका एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है:–

"हाय छिनी भूखों की रोटी
छिना नग्न का अर्द्ध वमन है।
मजदूरों के कौर छिने हैं,
जिन पर उनका लगा दसन है।"

9.9 अत्यन्त तिरस्कृत अविवाक्षित वाच्य ध्वनि

जिस ध्वनि में वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग या तिरस्कार होता है वहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य–ध्वनि होती है। यह लक्षण, लक्षणा पर आधारित रहता है, जैसे–

"बाउ कृपा मूरति अनुकूला।
बोलत वचन झरत जनु फूला।।
जो पै कृपा जरै मुनि गाता।
क्रोध भए तन राख विधाता।।"

9.10 अभिधामूला या विवक्षितान्य पर वाच्य–ध्वनि

जिस ध्वनि के अन्तर्गत वाच्यार्थ की विवक्ष (आवश्यकता) हो, अर्थात् वाच्यार्थ वांछनीय और प्रयोजनीय हो और साथ ही वह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ पर आश्रित रहता है। इसके दो भेद हैं:–

(i) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य–ध्वनि

(ii) असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य–ध्वनि।

9.11 संलक्ष्यक्रम व्यंग्य–ध्वनि

वाच्यार्थ का बोध हो जाने पर वहाँ तदनंतर व्यंग्यार्थ प्रकट होने का क्रम रहता है वहाँ संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि रहती है। इसे अणुरणन ध्वनि भी कहा जाता है। जिस प्रकार घण्टे पर चोट करने की प्रथम टकार के क्रमशः झंकार सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में स्पष्ट सुनाई देती है, उसी प्रकार से इस ध्वनि में भी वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ स्पष्ट होता है। इसके तीन भेद माने गये हैं।

(क) शब्दशक्ति उद्भव अनुरणन–ध्वनि

(ख) अर्थशक्ति उद्भव अनुरणन–ध्वनि

(ग) शब्दार्थशक्ति उद्भव अनुरणन–ध्वनि।

9.12 शब्दशक्ति

उद्भव अनुरणन ध्वनि जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का बोध कराने के लिए किसी शब्द विशेष का प्रयोग आवश्यक होता है वहाँ व्यंग्यार्थ बोधक शक्ति उसी शब्द विशेष में निहित रहती है, उसके पर्यायवाची शब्द में नहीं, वहाँ शब्दशक्ति उद्भव अनुरणन–ध्वनि मानी जाती है, जैसे–

"जहाँ कटा फटा हो मेरा अंबर अशून्य है आली।
आकर किसी अनिल ने यहां धूलि तो डाली।।"

जहाँ 'अम्बर' और 'अशून्य' शब्दों के द्वारा व्यंग्यार्थ निकलता है। इनके स्थान पर इनके पर्यायवाची शब्द रखने से नहीं। यहाँ पदगत अलंकार ध्वनि है। क्योंकि इन पदों से व्यतिरेक अलंकार व्यंजित होता है। इस ध्वनि के चार भेद हैं:–

(i) पदगत वस्तु ध्वनि, ;पपद्ध वाक्यगत वस्तु–ध्वनि, ;पपपद्ध पदगत अलंकार–ध्वनि,

(iv) वाक्यगत अलंकार–ध्वनि

9.13 अर्थादभव अनुरणन–ध्वनि

जहाँ पर वाच्यार्थ निकलने पर फिर व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह अर्थबोध किसी शब्द विशेष पर आश्रित नहीं रजता। इसके तीन भेद हैं:–

(i) स्वतः सम्भवी, (ii) कवि–प्रौढ़ोक्तिसिद्ध और ;पपपद्ध कवि निबद्ध पात्र प्रौढ़ोक्तिसिंह। इनमें से प्रत्येक के चार–चार भेद हैं– वस्तु से वस्तु, अलंकार, अलंकार से वस्तु और अलंकार से अलंकार और इनमें से भी प्रत्येक के तीन–तीन भेद होते हैं– पदगत, प्रबन्धगत और वाक्यगत। ऐसी दशा में ध्वनि का बड़ा व्यापक भेद विस्तार हैं। इनमें से कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं:–

पदगत अलंकार से अलंकार ध्वनि–

"निशि गई मोती सजाकर
हाट फूलों में लगाकर
लाज से गल जायेंगे।
मत पूछ इनमें मोल री।"

यहाँ पर मोती शब्द के कारण रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और आगे यह स्पष्ट है कि ये मोती साधरण मोती नहीं वरन् लाज से गढ़ जाने वाले विशिष्ट मोती हैं, अतः व्यतिरेक अलंकार सिद्ध हाता है। अतः यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से व्यतिरेक अलंकार सिद्ध होता है। यह अलंकार से अलंकार ध्वनि है। स्वतः सम्भवी पदगत अलंकार से वस्तु–

"जिन प्राणों से लिपटी हो
पीड़ा सुरभित चंदन सी
तूफानों की छाया हो
जिसको प्रिय आलिंगन सी।"

यहाँ पर 'चंदन के समान पीड़ा' और 'आलिंगन के समान तूफानों की छाया' कहने से उपमा अलंकार है, जिसके सहन शक्ति और साहस का गुण व्यंजित होता है। अतः अलंकार से वस्तु–ध्वनि है।
स्वतः संभवी प्रबंधगत वस्तु से वस्तु ध्वनि–

"फाग की भीर अमीरन की गहि गोबिद लैंगई भीतर गोरी
भाई करी मन की पद्याकर' पर नाइ अबीर की झोरी।
छोरि पितंबर कम्मर ते सुविदा दई मीड़ि कपोलन शेरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय लता फिर आइयों खेलन होरी।।"

यहाँ पर पूरे छंद से यह ध्वनि निकलती है कि कृष्ण को ऐसा रंग दिया कि फिर से होली खेलने के लिए आने का नाम न लेंगे, अतः यहाँ स्वतः संभवी प्रबन्धगत वस्तु से वस्तु–ध्वनि है।

9.14 कवि–प्रौढ़ोक्ति सिद्ध पदगत वस्तु से वस्तु–ध्वनि

जहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति के द्वारा कोई बात स्पष्ट होती है वहाँ यह ध्वनि मानी जाती है, जैसे–

"प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मंडल डोल।।"

यहाँ पर गुरूजनों की उपस्थिति के कारण लज्जा, राम के दर्शन की उत्कण्ठा इन दोनों का सम्मिलन चमत्कारी है।

9.15 भावशांति

जहाँ पर किसी भाव में समाप्ति में विशेषता देखी जाती है, वहाँ पर भावशांति होती है, जैसे–

"अतीव उत्कंठित ग्वाल बाल हो,
सवेग आते रथ के समीप थे।
परन्तु होते अति ही मलीन थे,
न देखते थे जब वे मुकुन्द को।।"

यहाँ पर उद्धव को आता देखकर ब्रजवासियों के हर्ष का भाव विषाद में (कृष्ण को न देखकर) शान्त हो जाता है।

9.16 भाव–सबलता

जहाँ एक के बाद अनेक भावों के आने से एक ही साथ अनेक भावों के सम्मिलन का सौंदर्य हो वहाँ भाव–सबलता होती है, जैसेः–

"जबते कुंवर कान्ह शवरी, कला निधान,
कान पुरी वाने कहु, सुजस कहानी सी।
तब ही ते देव देखी देवता सी हसाते सी
राझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी।
छोही सी, छली सी, छीन लीनी सी, छकी सी, छिन,
जकी सी, टकी, जगी सी, थहरानी सी।
बांधी सी, बंधी सी, विष बूढ़ति विमोहति सी,
बैठी बाल बकति विलोक विकानी सी।"

उपर्युक्त छन्द में उल्लास, कोप, उन्माद, जड़ता, मोह आदि अनेक भाव सम्मिलित होकर चमत्कार की सृष्टि करते हैं।

तीन प्रकार के काव्य ध्वनि सम्प्रदाय वाले तीन प्रकार का काव्य मानते हैः–

9.17 ध्वनि–काव्य

इसमें वाच्य या प्रत्यक्ष अर्थ की अपेक्षा प्रतीयमान या जान पड़ने वाला अर्थ अधिक चमत्कार्यपूर्ण प्रतीत होता है।

गुणीभूत व्यंग्य

इसमें व्यंग्य अर्थ होते हुए भी वह वाच्य अर्थ से कम चमत्कार्यपूर्ण हो।

नोटस

9.18 चित्र काव्य

इसमें शब्द और अर्थ के अलंकारों का चमत्कार दिखाया जाए। वह अधम काव्य कहा जाता है।

ध्वनि और वृति

काव्य में दो वृत्तियॉं या शैलियाँ मानी गई हैं:–

(i) **शब्द वृत्तिः**– शब्द चुनने और प्रयोग करने का ढंग।

(ii) **अर्थ वृत्तिः**– विषय की योजना करने वाला ढंग।

9.19 ध्वनि विरोधी आचार्य

ध्वनि सम्प्रदाय के सबसे प्रबल विरोधी प्रतिहारेन्दु राज ने उद्‌भट के काव्यालंकार की टीका में ध्वनि को भी अलंकारों मं ही गिन लिया है। इसी प्रकार मुकुल भट्‌ट ने भी 'अभियान वृत्ति–मातृका' में ध्वनि का स्वतन्त्र महत्व न मानकर उसे लक्षण में ही अन्तर्मूत कर लिया है। भट्‌टनायक ने अपने 'हृदय दर्पण' या 'ध्वनिध्वंस' में ध्वनि का खण्डन करके रस का महत्व प्रतिपादित किया है। ये भी रस के सम्बन्ध में मुक्तिवादी थे। कुन्तक ने यद्यपि स्पष्टतः तो ध्वनि का खण्डन नहीं किया परन्तु अपने वक्रोक्ति–सिद्धान्त के समर्थन के कारण वक्रोक्ति को ही इन्होंने प्रधान माना, और ध्वनि तथा रस दोनों को ही वक्रोक्ति का ही भेद माना।

महिम भट्‌ट ने अपने व्यक्ति विवेक (व्यंजना का विवेचन) नामक ग्रन्थ में ध्वनि को अनुमान के अन्तर्गत मानकर उसका खण्डन किया है और ध्वनि को लक्षण द्वारा सिद्ध माना।

खंड

10
वक्रोक्ति सम्प्रदाय

पाठ का प्रारूप

10.1 वक्रोक्ति का संक्षिप्त इतिहास
10.2 वक्रोक्ति का स्वरूप
10.3 वक्रोक्ति सिद्धान्त का अर्थ एवं व्यापकता
10.4 स्वभावोक्ति
10.5 वक्रोक्ति
10.6 वक्रोक्ति के भेद
10.7 ध्वनि–रसवादियों से कुन्तक का विरोध
10.8 कुन्तक और कवि–व्यापार

यह सिद्धान्त मानो अलंकार सिद्धान्त पर सूक्ष्म विचार करके स्थिर किया गया है। कथन या अभिव्यक्ति या चमत्कारपूर्ण ढंग ही वक्रोक्ति है।

जिसमें कोई बांकपन हो जो कि हमारे हृदय या मन पर प्रभाव डाल सके, यही कथन कविता है। यह कविता का एक स्वरूप अवश्य है। अभिव्यक्ति का बांकपन एक विशेष आया या चमक से षब्दों को भर देता है और कभी–कभी हृदय की अनुभूति चाहे उससे न उकसे पर मन–प्रसन्न होता है। अतः जहाँ पर अनुभूति को जगाना रस का काम है वहाँ मन का रंजन वक्रोक्ति द्वारा ही सम्भव है। आलंकारिक के द्वारा वक्रोक्ति एक अलंकार के रूप में मान्य है, पर इसे एक अलंकार न मानकर यदि हम सभी अलंकारों के मूल में देखें तो अधिकांश वक्रोक्ति ही मिलती है। अतः कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवतम' ग्रन्थ में वक्रोक्ति को इसी व्यापक अर्थ में ही प्रयुक्त किया है और कविता के क्षेत्र में उसको उपयोगी ठहराया है।

10.1 वक्रोक्ति का संक्षिप्त इतिहास

भारतीय काव्य षास्त्र में कुन्तक के वक्रोक्ति सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक हुए जिन्होंने ध्वनि को नहीं वक्रोक्ति को काव्य का जीवन (प्राण) माना। उनका उद्देश्य यद्यपि ध्वनि सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विरोध करना तो नहीं था, परन्तु उन्होंने उसकी पृथक सत्ता

न मानकर उसे वक्रोक्ति ही माना।

वक्रोक्ति षब्द अत्यन्त प्राचीन है। 'कादम्बरी' में इसका प्रयोग परिहास के अर्थ में हुआ। भामह ने इसका अर्थ 'इष्टावाचामलंकृतिः' अर्थात् अर्थ और षब्द का वैचित्रय करते हुए सभी अलंकारों का मूल माना है। भामह के उपरानत दण्डी ने वक्रोक्ति को स्वभावोक्ति के विपर्यय रूप में ग्रहण करते हुए उसे ष्लोषपोषित माना है। सारांश यह है कि भामह और दण्डी दोनों के अनुसार वक्रोक्ति कथन की उस विचित्र (असाधारण) षैली का नाम है जो साधारण इतिवृत्त षैली से भिन्न होती है–

नोटस

"शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च

वक्रता लोकोन्तीर्णेन रूपेणावस्थानम्।"

अर्थात् लोकोत्तर या निराले ढंग से षब्दों और अर्थों को बैठाना ही षब्द अर्थ की वक्रता कहलाती है जैसे–

मैं तुम्हें मार डालूंगा कहने के बदले यदि आपने कहा– मैं तुम्हें पराजय के भवन का अतिथि बना दूँगा। वक्रोक्ति हो गई।

सर्वप्रथम भामह ने अपने काव्यालंकार में वक्रोक्ति का परिचय दिया है। उन्होंने वहाँ वक्रोक्ति को अतिश्योक्ति का ही दूसरा नाम बताते हुए उसे ही काव्य का मूल तत्व माना है। उन्होंने कहा है:–

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति रनयार्थो विभाव्यते।

यत्रोऽस्या कविना कार्यः को ऽलंकारोऽनया बिना"

किन्तु भामह तो काव्य में वक्रोक्ति का ही उपयोग समझा है कि अलंकार के लिए वक्रोक्ति का होना आवश्यक है।

'वाचा वकार्य षब्दोक्ति लडकराय कल्पते'

अर्थात् टेढ़े अर्थ में षब्दों का प्रयोग करना ही अलंकार बन जाता है।

परवर्ती आचार्य ने रूद्रट आदि प्रायः सभी ने वक्रोक्ति को षब्दालंकार माना है, केवल एक वामन ने अर्थालंकार माना है। कुन्तक ने इन सभी का निषेध करते हुए वक्रोक्ति को पृथक अलंकार मानने से इनकार किया तथा अत्यन्त स्पष्ट षब्द और सबल षब्दों में उसे काव्य का जीवन माना है। कुन्तक काव्य को आहदकारी सालंकार षाब्दार्थ का साहित्य (साहित्य भाव) मानकर चले हैं।

वक्रोक्ति की व्याख्या उन्होंने 'वैदग्ध्य–भंगी भणिति' अर्थात् कथन की विचित्रता जो कवि प्रतिभा पर निर्भर है। वक्रोक्ति की इस व्यापक परिभाषा में उन्होंने षब्दालंकार, अर्थालंकार प्रबन्ध–कौशल आदि सभी को अन्तर्भूत कर लिया और उसे छः भागों में विभक्त किया, जो वर्ण–विन्यास से लेकर घटना–विन्यास तक में व्याप्त है।

10.2 वक्रोक्ति का स्वरूप

कुन्तक ने वक्रोक्ति का अर्थ किया है– विचित्र विन्यास क्रम। जो एक और षास्त्र आदि में प्रयुक्त इतिवृत्तात्मक षब्द और अर्थ के उपनिबन्ध से भिन्न अथवा विशिष्ट होता है और दूसरी ओर व्यवहारगत साधारण भाषा प्रयोग से इसीलिए उन्होंने वैदग्ध्य–भंगी भणिति कहा है। वैदग्ध्य का प्रयोग विद्वता से भिन्न काव्य ने पुण्य के अर्थ में बहुत पहले से चला आता था, भंगी–भणिति से तात्पर्य था– भाषा का वक्र अर्थात् रमणीय प्रयोग दूसरे षब्दों में उक्ति–चारूत्व। वैदग्ध्व कवि प्रतिभाजन्य होता है। अतएव वक्रोक्ति का प्रयोग भी निश्चय ही कवि–प्रतिभाजन्य ही होता है। कवि प्रतिभा एवं कवि व्यापार से स्वतन्त्र उसका अस्तित्व नहीं हैं यह कवि व्यापार क्या है इस विषय में कुन्तक मौन है क्योंकि षायद इसे वे अनिर्वचनीय मानते हैं। कुन्तक

की वक्रता एक पृथक उक्ति में ही सीमित न रहकर वर्ण–वन्यिास से लेकर प्रबन्ध रचना तक प्रसारित है।

नोटस

10.3 वक्रोक्ति सिद्धान्त का अर्थ एवं व्यापकता

वक्रोक्ति षब्द का सीधा अर्थ है टेढ़ी बात (वक्र उक्ति) या किसी बात को संधि न कहकर घुमा फिर कर कहना। तात्पर्य यह है कि– "जिस बात को साधारणतः लोग एक ढंग से कहते हैं उसे किसी दूसरे ढंग से सुन्दर, बनाकर कहने को ही वक्रोक्ति कहते हैं।" भोजन करने के लिये घर में कहते हैं–

खाना खा लीजिए इसी को दूसरा कहता है– "चलकर टिक्कड़ हुर ले।" यद्यपि पीछे की दोनों ही उक्तियाँ साधारण और टेढ़ी अर्थात् घुमाकर कही गई है किन्तु दूसरी में चमत्कार है और तीसरी में फूहड़पन और ग्राम्यत्व है।

"अतः वक्रोक्ति उसी उक्ति को कहते हैं जिसमें अत्यन्त विशिष्ट ढंग से कथन में चमत्कार उत्पन्न किया गया।" वक्रोक्ति के लिए वैचित्रय अनिवार्य है। उसमें किसी न किसी प्रकार की असाधारणता अवश्य होनी चाहिए।

वक्रोक्ति की इस परिभाषा में प्रायः इसी प्रकार का काव्य आ जाता है। सिद्धान्त रूप से यद्यपि कुन्तक ने स्वभावोक्ति में काव्यत्व का निषेध किया है, परन्तु व्यवहार रूप में वक्रोक्ति की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि वस्तुओं के स्वभाव का सफल अंकन प्रायः बाह्य अलंकारों से सज्जित वर्णन की अपेक्षा अधिक आहादकारी होता है। परन्तु वे इस बात पर बल देते हैं कि वस्तु (स्वभाव) के तत्वों का चयन साधारण दर्षष्टि से ही होना चाहिए। अर्थात् यह वर्णन वस्तु परिगणनन मात्र न होकर कवि–व्यापारजन्य होना चाहिए। अतः "वक्रोक्तिवाद का सम्बन्ध उक्ति–वक्रता से है।" वक्रोक्तिवाद एक साहित्यिक वाद है, वक्रोक्तिवाद एक प्रकार का कवि–कौशल है।

इस प्रकार वक्रोक्तिवाद में वक्रोक्तिकार नित्य की बोल–चाल की रीति से सन्तुष्ट नहीं होते।

"वक्रत्व सिद्ध – प्रस्थान – व्यतिरेक वैचित्रयम्।"

वक्रोक्तिवाद अलंकार को लेकर चलता है। इसमें वस्तु की उक्ति (कवि–कौशल) से पष्थक सत्ता मानी गई है। कुन्तक ने वस्तु के सहज और आहार्य दो भेद किए हैं:– प्रकरण वक्रता का सम्पूर्ण विवेचन ही वस्तु और कवि–कौशल के पार्थक्य पर आश्रित है। इसे कला की समस्या को बाहर से छेड़ा गया है। इसलिए वक्रोक्तिवाद काव्य अर्थात् कला के मूर्त रूपों पर ही केन्द्रित है।

दण्डी ने भी सम्पूर्ण वाड्मय को ही दो भागों में विभक्त कर दिया है:–

10.4 स्वभावोक्ति

जिसके अन्दर वस्तुओं का ज्यों–का–त्यों यथार्थ कथन हो। इसे स्वभावोक्ति को काव्यदर्श में जाति नाम से सर्वप्रथम अलंकार माना है।

10.5 वक्रोक्ति

जो स्वाभाविक कथन से भिन्न हो और जिसमें अतिशय कथन हो। इस विवेचन के अनुसार उपमा आदि सभी अथलिंकार तथा रसवत् प्रेयान आदि रस सम्बन्धी अलंकार सब वक्रोक्ति के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस प्रसंग में दण्डी ने कहा है कि –

"श्लेष के सम्पर्क से वक्रोक्ति और अधिक खिल उठती है।"

इसे हम यों कह सकते हैं कि भामह ने वक्रोक्ति की जो कल्पना की थी उसे ही दण्डी ने स्वीकार कर लिया। भामह ने वक्रोक्ति को सब अलंकारों का मूल और सामान्य वार्तालाप से भिन्न माना है किन्तु दण्डी ने तो स्वभावोक्ति को वक्रोक्ति के क्षेत्र से अलग कर दिया, क्योंकि वे वक्रोक्ति के लिये अतिशय कथन को आवश्यक नहीं मानते। वामन ने वक्रोक्ति का जो वर्णन किया है, उसका रूप भामह द्वारा प्रदर्शित वक्रोक्ति से भिन्न है। भामह ने तो वक्रोक्ति को अलंकारों का मूल आधार माना था, किन्तु वामन ने उसे अर्थालंकारों में गिन लिया। **वामन का मत है कि–**

नोटस

वक्रोक्ति भी सादश्य पर आघष्त लक्षणा ही है जैसे– प्रातःकाल सरोवर में कमल खिले और कुमुद संकुचित हो गये? वाक्य से कमल का खिलना और कुमुद के लिये संकुचित होने की बात में वक्रोक्ति है। ये खिलना और संकुचित होना दोनों नेत्र के काम हैं किन्तु समानता होने के कारण इनमें कमल के खुलने और बन्द होने का भी अर्थ निकलता है। रूद्रट ने वक्रोक्ति को एक प्रकार का षब्दालंकार ही मान लिया। जब कोई किसी बात को सुनकर उसके षब्दों का दूसरा अर्थ लगाकर कुछ दूसरा ही असंगत उत्तर दे उसे रूद्रट ने वक्रोक्ति माना है, जैसे–

"खोली जो किवाड तुंम को ही एतीबार
हरि नाम है हमारो, बसौ कानन पहाड़ में।"

कष्ण विलम्ब में रात्रि में आये और किवाड़ खटखटाने लगे। राधिका समझ गई कि कष्ण ही किवाड़ खटखटा रहे हैं परन्तु वे कहती हैं कि इतनी रात बीते कौन आया है? कष्ण जी कहते हैं कि मैं 'हरि' हूँ। हरि का दूसरा अर्थ बन्दर भी होता है। अतः बन्दर का अर्थ लेकर राधिका कहती हैं कि यदि बन्दर हो तो जंगल में पहाड़ पर चले जाओ। यह शिलष्ट वक्रोक्ति को अलंकार न मानकर काव्य का प्रधान तत्व माना है और विचित्र ढंग से कहने– वैछग्धीभंडीभणितिः को ही वक्रोक्ति माना है। इससे सिद्ध हुआ कि भामह ने अलंकार के मूल तत्व के रूप में अर्थालंकार माना, रूद्रट ने षब्दालंकार माना और कुन्तक ने काव्य का मूल तत्व माना। कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवित वक्रोक्ति काव्यस्य जीवितम् माना है इसीलिए वे वक्रोक्ति जीवितकार कहलाते हैं।"

10.6 वक्रोक्ति के भेद

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के 6 भेद किए हैं। इस विभाजन में आचार्य कुन्तक की सूक्ष्म बुद्धि और विभाजन कुशलता का पता चलता है। वक्रोक्ति के ये ही भेद आज भी मान्य हैं–

(i) वर्ण विन्यास वक्रता, (ii) पद पूर्वाद्ध वक्रता, (iii) पद परार्द्ध वक्रता, (iv) वाक्य वक्रता, (v) प्रकरण वक्रता और (vi) प्रबन्ध वक्रता।

वक्रोक्ति के इन भेदों का विवेचन इस प्रकार हैः–

वर्ण विन्यास वक्रता

जहाँ अक्षरों के विकास में नवीनता उत्पन्न हो जाये वहाँ वर्ण विन्यास–वक्रता होती है। यह वक्रता अन्य आचार्यों का अनुप्रास ही है। अनुप्रास में भी व्यंजनों का सामान्य ज्ञान अपेक्षित है, स्वर का नहीं। कुन्तक के आहार पर यह वक्रता तीन प्रकार की हैः– ;पद्ध एक वर्ण की आवृत्ति, ;पपद्ध दो वर्णों की आवृत्ति, ,पपपद्ध तीन वर्णों की आवृत्ति।

आगे चलकर कुन्तक ने यमक को भी इसके अन्तर्गत मान लिया है। यमक, यमकाभास अथवा यमक से साम्य रखने वाले अन्य वर्ण–चमत्कार वर्ण विन्यास–वक्रता के अन्तर्गत आते हैं–

तू मोहन के उरबसी है,
है उरबसी समान।"

नोटस

पद पूर्वार्द्ध वक्रता

इसके नाम से ही स्पष्ट है कि वक्रता पद के पूर्व भाग में होती है। इसके अन्तर्गत पर्याय, रूढ़ि, उपचार, विशेषण, संवृति, वृतिभाव, लि, क्रिया आदि के प्रयोग की विधि आती है।

"अक्षर समुदाय विभक्ति रहित होने पर प्रवृत्ति और विभक्ति युक्त होने पर पद कहलाता है।" इस वक्रता के कई भेद किए गए हैं–यथा (i) रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता] (ii) पर्याय वक्रता, (iii) उपचार वक्रता, (iv) विशेषण वक्रता आदि।

रूढ़ि वैचित्र्स पक्रता

यह वहाँ पर प्रयुक्त की जाती है, जहाँ लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा कथन करने के अभिप्राय से वाच्यार्थ की रूढ़ि से असम्भव अर्थ का अध्यारोप अथवा उत्तम धर्म के अतिशय का आरोप होता है। इसके प्रयोग में काव्य में एक अद्‌भुत सौन्दर्य आ जात है:–

"तब ही गुन सोमाल हैं
सहृदय जबहिं सराहिं
कमल कमल है
तबहि जब रविकरसों विसाहिं।"

इन पंक्तियों में कमल के प्रथम रूढ़ अर्थ का विस्तार किया गया है और उस पर एक कमनीय रूप अध्यारोप करना है।

पर्याय वक्रता

पंत की 'कष्शक–बालिका के जलधर' में इस वक्रता का प्रयोग किया गया है। षब्द 'जलधर' का प्रयोग बड़ा वक्रोक्तियुक्त है। इसमं चमत्कार भी आ गया है।

उपचार वक्रता:–

उपचार वक्रता काव्य में विशेष महत्व रखती है। लक्षण के प्रयोगों में विशेषत: इस वक्रता को अपनाया जाता है। छायावादी कविता में इसके अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। किसी अन्य वस्तु के सामान्य धर्म का लेशमात्र सम्बन्ध से भी दूरात्तर वस्तु पर आरोप उपचार कहलाता है।

"नीवर संध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
सो गया निखिल वन का ममेर

विशेषण वक्रता

जिस स्थान पर कारक या क्रिया महात्म्य या प्रभाव से वाक्य का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है, वहाँ वक्रता का

यह रूप देखने को मिलता है। प्रसाद, पंत और गुप्तजी आदि कवियों की कविताओं में हम विशेषण वक्रता का रूप पाते हैं:–

"तारक चिन्ह दुकूलिनी पी–पीकर मधुमात्र
उलट गई श्यामा यहाँ, रिक्त सुधाधर पात्र।"

लिंग वैचित्र्य वक्रता

इस वक्रता का उदाहरण छायावादी कवि पंत की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। पंत ने 'प्रथम रश्मि' कविता में लिखा है:–

"प्रथम–रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहिचाना!
कहां–कहां हे बाल–विहंगिनि?
सीखा तुने वह गाना।"

इतना ही नहीं पतं की इन पंक्तियों में भी लिंग वैचित्र्य का रूप देखा जा सकता है:–

"सिखादो ना हे मधुपकुमारि!
मुझे भी अपना मीठा गाना।"

पद परार्द्ध की वक्रता

वक्रोक्ति का तीसरा भेद पद परार्द्ध वक्रता है। यह वक्रता पद के बाद में प्रयुक्त होती है। अतः जहाँ षब्द के दूसरे आर्ध भाग में वक्रता हो, इसे प्रत्यय वक्रता भी कहा जा सकता है। इसके भी कई प्रकार हैं:–

कालवैचित्र्य वक्रता, कारक वक्रता, संख्या वक्रता, पुरूष वक्रता, उपग्रह वक्रता, प्रत्यय वक्रता, पद वक्रता आदि।

इस प्रकार की वक्रता का उदाहरण इन पंक्तियों से समझिए:–

"नासा मोरि नचाय दषा करी ककाकी सौंह।
कांटे सी कसकति हिय गाड़ी कटीली भौंह।।"

वाक्य वक्रता

यह वक्रता कवि प्रतिभा पर निर्भर है। प्रतिभा की भांति ही यह प्रतिभा भी विविध रूपिणी है। प्रधान रूप में इसमं अलंकारों का विवेचन किया जाता है। कुन्तक ने अलंकारों का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। अलंकारों में चारूता और कवि प्रतिभा दोनों को आचार्य कुन्तक ने आवश्यक माना है। वाक्य–वक्रता के अन्तर्गत ही "वस्तु वक्रता" भी आती है। वस्तु का स्वरूप भी दो प्रकार का होता है–

(i) स्वभाव–प्रधानः– स्वभाव–प्रधान में स्वभावोक्ति अलंकार की संयोजना होती है।

(ii) रस–प्रधानः– रस–प्रधान में रस का चमत्कार होता है।

प्रकरण वक्रता

वाक्य वक्रता से थोड़ा विस्तष्त रूप प्रकरण वक्रता का होता है। वाक्यों की सम्मिलित स्थिति प्रकरण का

निर्माण करती है। यह प्रकरण वाक्य में विशाल और प्रबन्ध का अंश मात्र है। प्रबन्ध में सौन्दर्य भरने के लिए प्रकरण वक्रता अत्यन्त आवश्यक है।

प्रबन्ध वक्रता

वाक्य से प्रकरण और विषय से सहयोग पाकर प्रबन्ध में आई वक्रता को प्रबन्ध वक्रता का नाम दिया जाता है। जब समूचा प्रबन्ध इस वक्रता से युक्त होता है तो उसे प्रबन्ध वक्रता कहा जाता है।

10.7 ध्वनि–रसवादियों से कुन्तक का विरोध

सिद्धान्त रूप में ध्वनि–रसवादियों से कुन्तक का एकमत भेद है। ध्वनिवादी वक्रोक्ति को ध्वनि तथा रस से रहित भी वक्रोक्ति एवं तदनुसार काव्यत्व की स्थिति स्वीकार करते हैं, परन्तु यदि आप गहराई में जाकर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि यह भेद भी केवल सिद्धान्त का है, व्यवहार का नहीं। व्यवहार में वक्रोक्ति और ध्वनि को एक–दूसरे से सर्वथा रहित नहीं पाया जाता, क्योंकि इन दोनों की अपनी–अपनी परिभाशाएँ इतनी लोक–व्यापक हैं कि किसी का भी कोई रूप दूसरे से बाहर नहीं पड़ सकता। वास्तव में कुन्तक की वक्रोक्ति अतिव्याप्त तो अवश्य मानी जा सकती है, परनतु अत्याप्त नहीं, अर्थात् विश्लेषण करने पर कोई भी ऐसा उदाहरण न मिलेगा, जिसमें काव्यात्व तो असंदिग्ध हो परन्तु कुन्तक की वक्रोक्ति या वक्रता न हो। कारण स्पष्ट है– जहँ सम्भव है वहाँ कवि–व्यापार अनिवार्यतः वर्तमान होगा, और जहाँ कवि–व्यापार होगा वहाँ वक्रोक्ति का अभाव कैसे हो सकता है। इसी दर्षष्टि से कुन्तक ने रस का पूर्ण महत्व दिया है।

10.8 कुन्तक और कवि–व्यापार

कुन्तक का अब एक षब्द रह जाता है, वह है कवि–व्यापार। उन्होंने कवि–व्यापार को विधि–व्यापार की भांति व्याख्यातीत मानते हुए उसकी परिभाषा नहीं की परन्तु वर्णन आगे चलकर किया है। कवि–व्यापार के तीन विभाग हैं– षक्ति व्युत्पत्ति और अभ्यास, जिनकी अभिव्यक्ति के माध्यम हैं क्रमशः सुकुमार, विचित्र और मध्यम मार्ग।

इन तीनों मार्गों के आधार हैं– गुण, जिनमें माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और अभिजात्य को हम विशेष गुण कह सकते हैं तथा औचित्य और सौभाग्य को सामान्य गुण।

इस प्रकार कुन्तक ने (रीति सिद्धान्त को भी अन्तर्भूत करते हुए) कवि–व्यापार को बाह्यरूप की व्याख्या नहीं की। वास्तव में भारतीय विचार परम्परा के अनुसार वे भी कवि को एक असाधारण व्यक्ति समझते थे और कवि–प्रतियों को जन्मान्तर गत पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त एक दैवी–शक्ति।

नोटस

खंड

11
छन्द

पाठ का प्रारूप

11.1 छन्दों का महत्व
11.2 छन्द का अर्थ एवं परिभाषा
11.3 हिन्दी–साहित्य कोश के अनुसार
11.4 छन्द के प्रकार
11.5 वर्णिक छन्द
11.6 वर्णिक वृत्त
11.7 छन्द के तत्व
11.8 वर्णिक गण (गण)
11.9 पाद या चरण
11.9 शुभाक्षर
11.10 अशुभाक्षरः–
11.11 गण फलक
11.12 मात्रिक छन्द
11.13 दोहा
11.14 स्पष्टीकरण
11.15 कुण्डलिया
11.16 स्पष्टीकरण
11.17 हरिगीतिका
11.18 स्पष्टीकरण
11.19 बरवै
11.20 स्पष्टीकरण
11.21 रूपमाला
11.22 गीतिका
11.23 उल्लाला

11.24 पद्धरि
11.25 छप्पय
11.26 त्रिभंगी
11.27 तोमर
11.28 आर्या
11.29 पीयूष वर्षक
11.30 सार
11.31 वार्णिक छन्द
11.32 इन्द्रवज्रा
11.33 स्पष्टीकरण
11.34 उपेन्द्रवज्रा
11.35 वसन्ततिलका
11.36 मालिनी
11.37 सवैया
11.38 द्रुतविलम्बित या सुन्दरी
11.39 मनहरण कवित
11.40 मन्दाक्रान्ता
11.41 रूप घनाक्षरी
11.42 देव घनाक्षरी
11.43 मालिनी
11.44 अनुष्टुप
11.45 शिखरिणी
11.46 मुक्त छन्द
❑ उपेन्द्रवज्रा
❑ विस्तृत लघुउत्तरीय प्रश्नःरस

11.1 छन्दों का महत्व

कविता का छन्द से अधिक सम्बन्ध है। छन्दों का आधार संगीत होने के कारण काव्य पद्यवध ही था। आजकल भी इसका महत्व निर्विवाद है। इसके बिना कविता का वास्तविक रूप स्पष्ट नहीं होता। यद्यपि अब स्वच्छन्द छन्दों की भी परम्परा पड़ गई है पर उसका रूप भी छन्द बद्ध ही है उसे अनिविध छन्द कह सकते हैं क्योंकि लय और पाठ्य सौन्दर्य का इसमें भी ध्यान रखा जाता है।

छन्दों से ही कविता में संगीतात्मकता आती है और संगीत से समाविष्ट काव्य मधुर और मनोहारी होकर अद्भुत आनन्द पहुँचाता है।

नोटस

यद्यपि कविता में छन्द को अनेक विद्वान बन्धन मानते हैं और कविता को छन्दहीन होने की घोषणा करते हैं फिर भी उनकी छन्दहीनता ही उन्हें छन्दबद्ध कर देती है। निराला मुक्त छन्द के समर्थक थे, किन्तु स्वयं उन्हीं की कविता मुक्त छन्द होते हुए भी प्रवाह एवं लय के कारण छन्दबद्ध है क्योंकि उसका प्रवाह ही छन्द है। वस्तुतः कोई भी काव्य छन्द हीन हो ही नहीं सकता।

कविता में छन्दों का उपयोग और महत्व निम्नलिखित दृष्टियों से होता है:–

1. भावों की अभिव्यक्ति को स्पष्टतर और तीव्रतर करने के लिए।
2. भावों के बिखराव में एक सूत्रता स्थापित करने के लिए।
3. कविता में सजीवता लाने के लिए।
4. कविता में रमणीयता और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने के लिए।
5. कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए।
6. रस निष्पत्ति में योगदान के हेतु।
7. प्रेषणीयता लाने के लिए।
8. *कवि के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिये।*
9. उक्ति में पवित्रता की प्रतिष्ठा के लिये।

समग्रतः छन्द भावोद्वक तथा भावों की तीव्रता, प्रदान करते हैं और इसके प्रयोग से कविता में संगीत या चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इसीलिये छन्द कविता के अनिवार्य तत्व हैं और इनका काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

11.2 छन्द का अर्थ एवं परिभाषा

'छन्द' का षाब्दिक अर्थ है 'बन्धन'। अतः वर्ण, गति, विराम, मात्रा, तुक आदि नियमों पर आधारित षब्द रचना को ही 'छन्द' कहा जाता है। 'छन्द' को अंग्रेजी भाषा षें 'डमजनतम' अथवा ष्टमतेमश कहते हैं।

जिस काव्य में वर्ण और मात्रा–गणना, यति (विराम) एवं गति का नियम तथा चरणान्त में समता हो उसे 'छन्द' कहते हैं। छन्द षब्द की व्युत्पत्ति छन्दक अथवा छन्दस् षब्द से है। कविता में जब निश्चित वर्ण अथवा मात्रा का विधान कर उसकी सृष्टि होती है तो वह सृष्टि छन्द कहलाती है।

113 हिन्दी–साहित्य कोश के अनुसार

"अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा–गणना तथा यति–गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद–रचना 'छन्द' कहलाती है।"

11.4 छन्द के प्रकार

छन्द एक प्रकार की काव्य व्यवस्था भी है। जिसमें ध्वनि, वर्ण, मात्रा, लघु, गुरू, तुक, यति आदि का विद्यान होता है। छन्द अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु मुख्य रूप से हिन्दी में तीन प्रकार के छन्द माने जाते हैं:–

1. **वर्णिक छन्द**
2. **मात्रिक छन्द**
3. **मुक्त छन्द**

11.5 वर्णिक छन्द

जिसके प्रत्येक चरण का निर्माण वर्णों या अक्षरों की एक नियमित संख्या एक व्यवस्था में हो, वह वर्णिक छन्द होता है।

अन्य षब्दों में– केवल वर्ण–गणना के आधार पर रचे गए छन्द 'वर्णिक छन्द' कहलाते हैं। वृत्तों की तरह इनमें गुरू, लघु का क्रम निश्चित नहीं होता, केवल वर्ण संख्या का ही निर्धारण रहता है। इसके दो भेद हैं–

(1) साधारण और (2) दण्डक।

छन्द के तत्व

साधारण छन्दः– एक से 26 वर्ण वाले छन्द साधारण छन्द होते हैं।

दण्डक छन्दः– 26 से अधिक वर्ण वाले छन्द दण्डक छन्द होते हैं।

हिन्दी के घनाक्षरी (कवित रूपघनाक्षरी और देव–धनाक्षरी वर्णिक छन्द हैं।

उदाहरणः–

सुनि मुनि गही। – 6 वर्ण

जग सुखदायी। – 6 वर्ण

कहि अब सोई। – 6 वर्ण

जेहि यश होई। – 6 वर्ण

11.6 मात्रिक छन्द

मात्रा की गणना पर आधारित छन्द 'मात्रिक छन्द' कहे जाते हैं। इनमें वर्णों की संख्या भिन्न हो सकती है, परन्तु उनमें निहित मात्राएँ नियमानुसार होनी चाहिए। इस छन्द में मात्राओं का निश्चित एवं नियमित विधान होता है।

इसमें वर्णों की संख्या कम या अधिक हो सकती है किन्तु प्रत्येक पंक्ति में उतनी ही मात्राएँ होंगी, जितनी प्रथम पंक्ति में होंगी। जैसे–

	मात्रा		वर्ण
षशि मुख पर घूँघट डाले	14	–	11
अंचल में दीप छिपाए	14	–	9

जीवन की गोधूलि में	14	—	8
कौतूहल से तुम आए	14	—	9

नोटस

11.7 मुक्त छन्द

इसमें न तो मात्राओं का विधान होता है और न वर्णों का। यह छन्द इनसे स्वतन्त्र रहता है। इसी से इसे मुक्त छन्द कहते हैं। इसमें लय का विधान रहता है। जैसे–

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघाटर में डूबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।

11.18 वर्णिक वृत्तः–

वर्णिक छन्द का एक क्रमबद्ध, नियोजित और व्यवस्थित रूप वर्णिक वृत्त होता है। वृत्त उस सम छन्द को कहते हैं, जिसमें समान चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में आने वाले वर्णों का लघु–गुरू क्रम सुनिश्चित रहता है। गुणों के नियम से नियोजित रहने के कारण इसे गुणात्मक छन्द भी कहते हैं। मन्दाकान्ता, इन्द्रवुज्जा, उपेन्द्रवज्जा, वंशस्थ, मालिनी आदि इसी प्रकार के छन्द हैं।

छन्द के तत्व

छन्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए छन्दों के विभिन्न तत्वों के विषय में जानना परमावश्यक है। छन्दों के मुख्य तत्व इस प्रकार हैंः–

वर्ण

मुख से निकलने वाली ध्वनि को सूचित करने के लिए निश्चित किए गए चिन्ह 'वर्ण' कहलाते हैं।.वर्ण दो प्रकार के होते हैं–

(क) ह्रस्व (लघु) तथा (ख) दीर्घ (गुरू)

(क) ह्रस्व (लघु):– ह्रस्व वर्ण मात्रा गणना की प्रमुख इकाई है। लघु वर्ण एक मात्रिक होता है। यथा– अ, इ, उ, क कि, कु। लघु का चिन्हं '।' है। दो लघु वर्ण मिलकर एक गुरू के बराबर माने जाते हैं। इसके नियम निम्नलिखित हैंः–

1. संयुक्ताक्षर स्वयं लघु होते हैं।
2. चन्द्रबिन्दु वाले वर्ण लघु या एक मात्रावाले माने जाते हैंः– यथा हँसना, फँसना आदि में है फँ।
3. ह्रस्व मात्राओं से युक्त सभी वर्ण लघु ही होते हैं जैसेः– कि, कु आदि।
4. हलन्त व्यंजन भी लघु मान लिए जाते हैं, जैसे– अहम्, स्वयम् में 'म'।
5. संयुक्ताक्षर से पूर्व का लघु वर्ण जिस पर भार नहीं पड़ता, लघु ही रहता है; जैसे – कन्हैया, जुन्हैया में।

(ख) दीर्घ (गुरू):– दीर्घ वर्ण ह्रस्व या लघु की तुलना में दुगनी मात्रा रखता है। दीर्घ वर्ण के लिए 'S' चिन्ह प्रयुक्त होता है।

मात्रिक छन्दों में मात्रा की गणना करते समय दीर्घ वर्ण सम्बन्धी निम्नलिखित प्रकार के हैं:–

1. संयुक्ताक्षर से पूर्व के वर्ण दीर्घ होते हैं, जैसे– दुष्ट, अक्षर आदि में 'दु' औदर 'अ'। यदि संयुक्ताक्षर ने नया शब्द प्रारम्भ हो तो कुछ अपवादों को छोड़कर उसका प्रभाव अपने पूर्व शब्द के लघु वर्ण पर नहीं पड़ता, जैसे– वह भ्रष्ट में 'ह' लघु ही है।
2. अनुस्वार युक्त वर्ण दीर्घ होते हैं, जैसे– कंत आनन्द के 'क' और 'न'।
3. विसर्ग वाले वर्ण दीर्घ माने जाते हैं, जैसे–दुख में 'दु'। दीर्घ मात्राओं से युक्त वर्ण दीर्घ माने जाते हैं, जैसे– कौनि, कब, कैसे आदि। यदि उनका उच्चारण लघु की तरह किया गया तो उन्हें लघु ही माना जाएगा, जैसे– 'कहेउ' में 'हे'। वास्तव में उच्चारण ही किसी वर्ण को दीर्घ बनाने का आधार है।
4. कभी–कभी चरण के अन्त में लघु वर्ण भी विकल्प से दीर्घ मान लिया जाता है, जैसे– लीला तुम्हारी अति ही विचित्र में 'त्र' दीर्घ है।

मात्रा

वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे 'मात्रा' कहते हैं। लघु वर्ण की एक मात्रा मानी जाती है। गुरू वर्ण के उच्चारण में उससे दुगना समय लगता है, अतः उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

गति

पढ़ते समय कविता के स्पष्ट सुखद प्रवाह को गति कहते हैं। कविता में केवल वर्ण तथा मात्रा की संख्या का विचार नहीं किया जाता, अपितु उसकी गति भी देनी पड़ती है। गति का अभिप्राय है, प्रवाह। वर्ण के क्रम को बदल देने पर उसकी मात्राओं तथा वर्ण संख्या में तो कोई अन्तर नहीं पड़ता किन्तु उसकी गति भंग हो जावेगी और उसके पढ़ने में पूर्ववत आनन्द नहीं आवेगा, जैसे:–**प्रियवति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?**

यदि वर्णो के क्रम को इस प्रकार रख दिया जाए– मेरा प्राण प्यारा वह प्रिय पति कहाँ है? तो इसमें पढ़ने में पहले जैसा आनन्द नहीं आ सकता, इसका अर्थ ही बदल गया।

यति

(विराम) छन्दों में विराम या रूकने के स्थलों को यति कहते हैं। छन्द की एक लय होती है, जिसे गति या प्रवाह भी कहते हैं। छन्दों में विराम के नियमों का पालन भी किया जाता है। छन्द के प्रत्येक चरण में उच्चारण करते समय मध्य या उक्त में जो विराम होता है। उसे यति कहा जाता है।

"प्रत्येक छन्द में अनेक स्थानों पर विश्राम या विराम के नियम बने होते हैं, जहाँ पर पाठ्य की जिह्वा को विश्राम मिलता है। इसी विश्राम स्थालों को छन्द षाला में यति कहा जाता है।"

जैसे:–

सुनि केवट के बैन,
प्रेम लपेटे अटपट

यहाँ पर बैन के बाद 'यति' है।

तुक

छन्दों के चरणों के अन्त में एकसमान उच्चारण वाले षब्दों के आने से जो लय उत्पन्न होती है, उसे 'तुक' कहते हैं।

नोटस

11.9 वर्णिक गण (गण)

वर्णिक वृत्तों में वर्णों की व्यवस्था तथा गणना के तीन–तीन वर्णों की व्यवस्था तथा गणना के तीन–तीन वर्णों के गण–समूह बनाए गए हैं। इन्हें वर्णिक गण कहते हैं। इनकी संख्या आठ है:–

उदाहरण

नाम	लघु	संख्या	रेखारूप	वर्णरूप
यगण	य	ISS	यमाता	यशोदा
मगण	म	SSS	मातारा	राजाज्ञा
तगण	त	SSI	ताराज	आकाश
रगण	र	SIS	राजभा	भारती
जगण	ज	ISI	जभान	नवीन
भगण	भ	SII	मानस	भारत
नगण	न	III	नसल	कमल
सगण	स	IIS	सलगा	अबला

इन गणों का रूप जानने के लिए यह सूत्र विशेष रूप से सहायक है– 'यमाताराजभानसलगा'। इस सूत्र के आधार पर गण का नाम और उसकी मात्राओं की संख्या असानी से ज्ञात हो जाती है। यथा– प्रारम्भ के आठ आक्षर आठ गणों के नाम हैं। उनकी मात्राओं को जानने के लिए प्रत्येक गण के वर्ण के आगे वाले दो वर्ण लिखकर उनके लघु–गुरू क्रम से मात्राओं को जाना जा सकता है–

जैसे यगण में:–

य	मा	ता
I	S	S : 5 मात्राएँ

पाद या चरण

छन्द में प्रायः चार पंक्तियाँ होती हैं। छन्द की एक पंक्ति को 'पाद' कहते हैं। इसी पाद को उस छन्द का चरण कहा जाता है। पहले और तीसरे चरण को विषम तथा दूसरे और चौथे चरण को सम चरण कहते हैं।

शुभाक्षर

[गल के अनुसार– कुछ वर्ण षुभ और कुछ अशुभ कहे गये हैं। ये पन्द्रह वर्ण षुभाक्षर हैं– क, ख, ग, घ, च, छ, ज, द, ध, न, य, श, स, क्ष, ज्ञ।

अशुभाक्षर

इन्हें 'दग्धाक्षर' भी कहते हैं। दग्धाक्षरों को कविता के प्रारम्भ में नहीं रखना चाहिए। ये अक्षर इस प्रकार हैं:–ऽ, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, त, थ, ब, भ, म, र, ल, व, श, ह। आवश्यकतानुसार इनके दोष–परिहार का भी विधान है।

गण फलक

आठ गणों के देवता, फल और शुभ–शुभ आदि भिन्न–भिन्न हैं।

क्र०सं०	गण	देवता	फल	शुभाशुभ
1.	भगण	चन्द्रमा	यश	शुभ
2.	यगण	जल	वृद्धि	शुभ
3.	जगण	सूर्य	रोग	अशुभ
4.	रगण	अग्नि	विनाश	अशुभ
5.	सगण	वायु	देशाटन	अशुभ
6.	लगण	आकाश	हानहानि	अशुभ

मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्दों में केवल मात्राओं की व्यवस्था होती है, वर्णों के लघु और गुरू के क्रम का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। इन छन्दों के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या नियत रहती है। मात्रिक छन्द तीन प्रकार के होते हैं:–

(क) सम, (2) अर्द्धसम, (3) विषम।

मात्रिक छन्दों का उदाहरण सहित परिचय निम्नलिखित हैं:–

11.10 दोहा

परिभाषा

यह अर्द्धसम मात्रिक छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले और तीसरे चरण में 13–13 मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में 11–11 मात्राएँ होती हैं। इसके विषम चरणों के आदि में जगण नहीं होना चाहिए तथा सम–चरणों के अन्त में गुरू–लघु होना चाहिए।

उदाहरण:

।।। ऽ। ।। ऽ।ऽ ऽ। ऽ। ।।ऽ।

लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।

ग्यान सभा जनु तुन घरें, भगति सच्चिदानन्द।।

स्पष्टीकरण

इस पद्य के पहले और तीसरे चरण में 13–13 मात्राएँ हैं और दूसरे और चौथे चरण में 11–11 मात्राएँ हैं, अतः यह 'दोहा' छन्द है।

नोटस

11.11 चौपाई

परिभाषा

चौपाई सम मात्रिक छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण और तगण के प्रयोग का निषेध है। -

उदाहरणः–

।।। S। S।। ।।SS
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे।
सहज सनेहु सराहन लागे।।
होत न भूतल याऽ भरत को।
अचर सचर चर अचर करत को।।

–तुलसीः रामचरितमानस।

11.12 सोरठा

परिभाषा

यह अर्द्धसम मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम और तष्तीय चरण में 11–11 मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 13–13 मात्राएँ होती हैं। पहले और तीसरे चरण के अन्त में गुरू–लघु आते हैं और कहीं–कहीं तुक भी मिलती है। यह दोहा छन्द के विपरीत होता है।

उदाहरणः–

S। ।S।।S। ।।। ।।। S।। ।।।
नील सरोरूह स्याम, तरून अरून बारिज नयन।

–तुलसीः रामचरितमानस

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रथम और तष्तीय चरण में 11–11 तथा द्वितीय और चतुर्था चरण में 13–13 मात्राएँ हैं। अतः यह 'सोरठा छन्द' है।

11.13 रोला

यह सम मात्रिक छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। प्राचील काल में 11 और 13 मात्राओं पर यति होती थी किन्तु अब इस नियम को नहीं माना जाता।

उदाहरणः–

SI SII ISI SI II IIII SII

"कोउ पापिह पँचतत्व प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावन बीर बढ़त चौचंद मचावत।।
पै तकि ताकी लोथ त्रिपंथगा के तट लावत।
नौ दै ग्यारह होत तीन पाँचहिं विसरावत।"

–भारतेन्दुः गंगावतरण

11.14 कुण्डलिया

परिभाषा

यह विषम मात्रिक छन्द है। इसमें 6 चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। आदि में एक दोहा और बाद में एक रोला जोड़कर कुण्डलिया छन्द बनता है। ये दोनों छन्द मानों कुण्डली रूप में एक–दूसरे से गुँथे रहते हैं, इसलिए इसे 'कुण्डलिया' छन्द कहते हैं। जिस शब्द से इन छन्द का प्रारम्भ होता है, उसी से इसका अन्त भी होता है। दोहा का चौथा चरण 'रोला' के प्रथम चरण का भाग होकर आता है।

उदाहरणः–

SS SI I SIS II SII II SI

साई बैर न कीजिए गुरू पण्डित कवि यार।
बेटा बनिता पैरिया यज्ञ करावन हार।।
यज्ञ करावन हार राजमंत्री जो होई।
बिप्र पड़ोसी बैद्य आपुनों तपै रसोई।।
कह गिरिधर कविराय जुगत सो यह चलि आई।
इन तेरह को तरह दिए बनि आवै साई।।

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रथम एवं द्वितीय चरण दोहा के हैं तथा आगे के चार रोला के। दोनों के कुण्डलित होने पर 'कुण्डलिया' छन्द का निर्माण हुआ है।

नोटस

11.15 हरिगीतिका

परिभाषा

यह सम मात्रिक छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके चरण में 28 मात्राएँ होती हैं। 16 और 12 मात्राओं पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अन्त मं रगण (S।S) आना आवश्यक है।

उदाहरणः— ।। S। SS

खग–वृन्द सीता है अतः कल कल नहीं होता वहाँ।
बस मंदु मारूत का गमन ही मौन है खोता जहाँ।।
इस भाँति धीरे से परस्पर कह सजगता की कथा।
यों देखते हैं वृक्ष ये हों विश्व के प्रहरी यथा।।

–हरिऔधः प्रियप्रवासउदाहरणः—

S।। ।।S ।। ।। ।।। ।S।

चंपक हखा अँग मिलि, अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुमिलाय।।

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ हैं, अतः यह 'हरिगीतिका' छन्द है।

11.16 बरवै

परिभाषा

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में 12–12 मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 7–7 मात्राएँ होती हैं। समः चरणों के अन्त में जगण (।S।) होता है।

उदाहरणः— S।। ।।S ।। ।। ।।। ।S।

चंपक हखा अँग मिलि, अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे, जब कुमिलाय।।

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रथम एवं द्वितीय चरण में 12–12 तथा द्वितीय तृतीय चरण में 7–7 मात्राएत्र हैं, अतः यह बरवै छन्द है।

11.17 रूपमाला

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। इसकी तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा लघु होती है। प्राचीन काल में 14 मात्राओं पर यति होती थी पर आलकल इसका पालन प्रायः नहीं होता। छन्द का निर्माण आदि में एक एकल के बाद एक द्विकल से होता है।

उदाहरणः–

एक जीवन सिन्धु था तो वह लहर लघु लोल,
एक नवल प्रभात तो वह स्वर्ग किरण अमोल।
एक था आकांश वर्षा का सजल उधाम,
दूसरा रजित किरण से थी कलित घनश्याम।।

11.18 गीतिका

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं प्राचीन कनियमानुसार यति 14–12 पर होती है। अन्त में लघु–गुरू क्रम से तीन मात्राओं का विधान है।

उदाहरणः–

साधु संतों में संयोगी संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पर सूरमा चढ़ने लगे।
वेद मंत्रों की विवेकी प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचकों की छातियों से शूल हैं गड़ने लगे।

11.19 उल्लाला

परिभाषा

इस छन्द के दो रूप हैं, जिन्हें प्रथम, उल्लाला एवं द्वितीय उल्लाला के रूप में जाना जाता है। प्रथम उल्लाला के प्रत्येक चरण में 13–13 की यति से 26 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरणः–

मेरा शिशु संसार यह दूध पिये परिपुष्ट हो।
पानी के ही पात्र तुम सभी रूष्ट या तुष्ट हो।

द्वितीय उल्लाला में 15–13 की यति से 28 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरणः—

करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी उस वेष की
हे मातृ भूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

11.20 पद्धरि

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरण सम प्रवाही (सम प्रकार अर्थात् क्रमशः लघु गुरू) होता है।

उदाहरणः—

अंबर में कुन्तल जाल देख
पद के नीचे पाताल देख

1.21 छप्पय

परिभाषा

इस छन्द में 6 चरण होते हैं। यह रोला और उल्लाला के योग से बनता है। प्रथम चार पंक्तियाँ रोला की और अन्तिम दो उल्लाला की होती हैं।

उदाहरणः—

चेरी भी वह आज कहाँ कल थी जो रानी।
दानी प्रभु ने छिपा उसे क्यों मन है मानी?
अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।
मेरा शिशु संसार यह दूध पिये परिपुष्ट हो।
पानी के ही पात्र तुम सभी रूष्ट या तुष्ट हो।

11.22 त्रिभंगी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या 12 होती है। 10–8–8 और 6 पर यति होती है। चरण के अन्त में गुरू (S) होता है।

उदाहरणः—

परसत पद पावन सकिन सायन प्रकट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइकर जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा फुलक सरीरा, मुख नहि आवत वचन कही।
अतिशय बड़ भागी चरननि लगी जुगल नयन जलधार बही।।

11.23 तोमर

परिभाषा

प्रत्येक चरण में 12 मात्राएँ होती हैं। चरणों के अन्त में गुरू लघु (ऽ।) होता है।

उदाहरणः—

जय राम सोभा धाम।
दायक प्रणत विश्राम।
धृत तून वर सर चाप।
भुज दण्ड प्रबल प्रताप।

11.24 आर्या

परिभाषा

इसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में 12–12 मात्राएँ एवं सम चरणों (दूसरे और चौथे) चरणों में क्रमशः 18 और 15 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरणः—

पहले आँखों में थे
मानस में कुछ मग्न प्रिय अब थे।
छीटे वही उड़े थे।
बड़े–बड़े अश्रु यह कब थे।

11.24 पीयूष वर्षक

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में 19 मात्राएँ होती हैं और 9 पर यति होती है तथा चरण के अन्त में लघु गुरू (।ऽ) होता है। इसमें प्रायः सप्तक और रूग्ण का संयोग होता है।

उदाहरणः–

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा।
कौन जाने किस तरह? पीयूष सा।
एक कोमल सुव्यवस्थित श्वास था।
पुनर्जीवन–सा मुझे तब दे रहा।

11.26 सार

परिभाषा

इसे सार या ललित भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं। 16–12 पर यति होती है तथा चरणान्त में दो गुरू (SS) होते हैं।

उदाहरणः–

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरण सी वामा।
कवि के स्वप्न समान विश्व के विस्मय भी अभिरामा।
सिन्धु गोद में लय से पहले तरगित सरिता सी।
आकर चकित हुई तट पर प्रियतम दर्शन की प्यासी।

11.27 वार्णिक छन्द

जिन छन्दों की रचना वर्णों की गणना के आधार पर की जाती है, उन्हें वर्णवृत्त या वर्णिक छन्द कहते हैं। वर्णवृत्तों के तीन मुख्य भेद हैं:– (1) सम (2) अर्द्धसम तथा विषम। इनका उदाहरण सहित परिचय निम्नलिखित है:–

इन्द्रवज्रा

परिभाषा

यह सम वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ।। वर्ण त त ज ग ग; अर्थात् दो तगण, एक जगण और दो गुरू के क्रम में रहते हैं।

उदाहरणः–

त त ज ग ग
S S ।S S। । S । S S
मैं जो नया ग्रंथ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है।

देखूँ उसे मैं नित नेम से ही,
मानों मिला मित्र मुझे पुराना।

—हरिऔध

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रत्येक में दो लतगण, एक जगण और दो गुरू के क्रम से 11 वर्ण हैं, अतः यह 'इन्द्रवज्रा' छन्द है।

उपेन्द्रवज्रा

परिभाषा

यह सम वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में त भ ज ज ग ग; अर्थात् तगण, भगण, दो जगण और दो गुरू के क्रम से 11 वर्ण होते है।

उदाहरणः—

ज त ज गग
। ऽ । ।ऽऽ । । ऽ । ऽ ऽ
बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा।
कभी न अच्छा परिणाम होगा।

—हरिऔध

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरू के क्रम से 11 वर्ण हैं, अतः यह उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

—केषवः रामचन्द्रिका

11.28 वसन्ततिलका

परिभाषा

इस पद्य के प्रत्येक में त भ ज ज ग ग; अर्थात् तगण, भगण, दो जगण और दो गुरू के क्रम से चौदह वर्ण होते हैं।

उदाहरणः— त भ ज ज गग

S S I S I I ISI I S I S S

जो राजपंथ वन–भूतल में बना था,

धीरे उसी पर सधा रथ जा रहा था।

हो हो विमुग्ध रूचि से अवलोकते थे।

उधो छटा विपिन की अति ही अनूठी।

–हरिऔध; प्रियप्रवास

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रत्येक चरण में तगण, भगण दो जगण और दो गुरू के क्रम से 14 वर्ण हैं, अतः यह 'वसन्ततिलका' छन्द है।

11.29 मालिनी

परिभाषा

यह सम वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में न न म य य; अर्थात् दो नगण, एक मगण और दो यगण के क्रम से 15 वर्ण होते हैं। 8, 7 वर्णों पर यति होती है।

उदाहरणः—

न न म य य

I II II SS SI SS I S S

प्रिय पति वह मेरा, प्राण प्यारा कहाँ है।

दुःख–जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।

अब तक जिसको मैं, देख के जी सकी हूँ।

वह हृदय हमारा, नेत्र तारा कहाँ है।।

–हरिऔध; प्रियप्रवास

स्पष्टीकरण

इस पद्य में दो नगण एक मगण तथा दो यगण के क्रम में 15 वर्ण हैं, अतः यह 'मलिनी' छन्द है।

11.30 मतगयन्द (सवैया)

परिभाषा

यह सम वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 7 मगण और दो गुरू के क्रम से 23 वर्ण होते हैं।

उदाहरणः–

भ भ भ भ भ भ भ गग

S I I S II S I I S I I S I I S I I S I I S S

सास जटा, उर–बाहू बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौहें।
तून सरासन–बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूछँति ग्राम बधु सिय सों, कहौ साँबरे से सखि रावरे को हैं।

–तुलसीः कवितावली

स्पष्टीकरण

इस पद्य में सात भगण और दो गुरू के क्रम से 23 वर्ण हैं, अतः यह 'मतगयन्द' सवैया छन्द है। इसके प्रथम चरण के अन्त में 'छी सी' का लघु उच्चारण 'छी सि' होगा।

11.31 सुन्दरी (सवैया)

परिभाषा

यह सम वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में आठ सगठ और एक गुरू वर्ण के क्रम में 25 वर्ण होते हैं।

उदाहरणः–

स स स स स स स स ग

II SII S II S II SII SI I S II SI IS S

भुप भरहि संयुक्त राकस को गन जाए रसातल मैं अनुराग्यो।
जग में यह शबद समेतहिं 'केसव' गज विभीषन के सिर जाग्यौ।
मय–दानव नंदिनी के सुख सो मिलि के सिव के हिय के दुःख भाग्यौ।
सुर दुदुभि सीस गजा सर राम को रावन के सिर साथहि लाग्यौ।

–केशवः रामचन्द्रिका

11.32 मनहर (सवैया)

परिभाषा

यह दण्डक वृत्त है। इसे 'मनहरण' कवित भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं। 16–15 वर्णों पर यति होती है। अन्त में एक गुरू वर्णन होता है।

उदाहरण:–

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदे पड़ती थीं, घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली–झनकर यही मेरे मन भाई थी।।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनबुरो से
चंचला थी चमकी, धनाली धहराई थी।
चौंक देखा मैंने, चुप कोने से खड़े थे प्रिय,
माई! मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।

–मैथिलीशरण गुप्त

स्पष्टीकरण

इस पद्य के प्रत्येक चरण में 31 वर्ण हैं और 16–15 वर्णों पर यति है; अतः यह मनहर सवैया है।

11.33 द्रुतविलम्बित या सुन्दरी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण दो भगण और एक रगण आता है। प्रत्येक चरण में आने वाले वर्णों की संख्या 12 होती है।

उदाहरण:–

दिवस का अवसान समीप था।
मनुष्यता में शुचि शास्त्र योग्यता।।
सुयोग्यता में पिय काव्य कारिता।
सुकरिता में अति शक्ति साध्यता।।

11.34 मनहरण कवित

परिभाषा

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं, और चरणान्त में गुरू तथा यति सोलहवें एवं 15 वर्ण पर होती है। इसे मनहरण के अतिरिक्त मनहर धनाक्षरी अथवा 'कवित' भी कहते हैं।

उदाहरणः–

रस के प्रयोगनि के सुख सुजोगनि के,
जेते उपचार चारू मंजू सुखदायी है।
तिनके चलावन की चर्चा चलावै कौन,
देते ना सुदर्शन हूँ यों सुधि सिराई है।
करत उपाय ना सुझाय जानि नारिन कौं,
भाव क्यो अनारिन को भरत कन्हाई है।
हाँ तो विषय ज्वर–वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत कन्हाई है।

11.35 मन्दाक्रान्ता

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण एवं दो गुरू वर्ण आते हैं। प्रत्येक चरण में आने वाले वर्णों की संख्या 19 होती है।

उदाहरणः–

तारे डूबे तम टल गया छा गई व्योम लाली।
पक्षी बोले तमन्तपुर जगे, ज्योति फैली दिशा में।
शाखा सकल डोली तरू की कुंज फूले सरों में।
धीरे–धीरे दिनकर कढ़ तामसी शत बीती।।

11.36 रूप घनाक्षरी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या 32 होती है, 16–16 वर्णों पर यति होती है।

उदाहरणः–

भूरी–हरी घास आसपास फूली सरसों है।
पीली–पीली बिन्दियों का चारों ओर प्रसार।

कुछ दूर विरल सघन फिर और आगे।
एक रंग मिला चला गया, पीर पारावार।।
गाढ़ी हरी श्यामता की तुंग राशि रेखा धनजी
बाँधती है, दक्षिण की और उसे धेरधार
जोड़ती है जिसे खुले नीले नभ मण्डल से
धूँधली सी नील जगमाला उठी धूआँधार।।

11.37 देव घनाक्षरी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में 33 वर्ण होते हैं। यति प्रथम 16 के बाद होती है। चरण के अन्त में तीन लघु (।।।) अर्थात् नगण होता है।

उदाहरणः–

जान गया जान गया कौन हो सुजान तुम
तुम्हे पहिचान गया मत बतलाओ तुम।
खोल दो नयन मत मुझे तरसाओ तुम।
सुख सरसाओं प्रेम सुधा बरसाओ तुम
खूब छिटकाओं निज छवि की निराली छटा।
भाँति–भाँति के अनूप रूप दिखलाओ तुम।
छिपकर जाने कब पाओगे कदापि नहीं।
जाओ या न जाओ फिर आओ या न आओ तुम।।

11.38 मालिनी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण एवं दो यगण होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चरण में जाने वाले लघु गुरू वर्णों की संख्या 15 होती है।

उदाहरणः–

प्रमुदित मथुरा के मानवों के बना के।
सकुशल रह के औ विहन बाधा बचा के।
निज प्रिय सुत दोनों साथ लेके सुधी हो,
जिस दिन पलटेंगे देह स्वामी हमारे।

11.39 अनुष्टुप

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं। इनमें पाँचवां वर्ण लघु तथा छठा वर्ण गुरू होता है। इस छन्द का प्रारम्भ नगण एवं सगण से नहीं होना चाहिए, ऐसा माना जाता है।

उदाहरणः–

भिन्न जो भाव भंगी में,
भाती है रूप सम्पदा।
फूल धुल उड़ा के भी
आमोद प्रद है सदा।

11.40 शिखरिणी

परिभाषा

इसके प्रत्येक चरण में कमशः एक यगण एक मगण एक नगण, एक सगण, एवं एक लघु तथा एक गुरू होता है। प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या 17 होती है।

उदाहरणः –

अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से
बना जो देती थी गुणमयी भू विपिन की
निराले फूलों की,, विविध देव वाली अनुपमा
जड़ी बूटी ही हो, बहु फलवती श्री विलसती।

11.41 मुक्त छन्द

आज मुक्त छन्द के अभिधान से जाना जाने वाला जो छन्द है उसका भी एक अपना इतिहास है। सर्वप्रथम यह अतुकान्त छन्दों के माध्यम से हरिऔध जी के रचनाओं में आया। इसके बाद गुप्त बन्धु (मैथिली सियाराम) अनूप शर्मा, गिरधर शर्मा, लोचन प्रसाद पाण्डे आदि द्वारा प्रचार एवं प्रसार प्राप्त किया। वैसे मुक्त छन्द के सर्वप्रथम सफल प्रभावशाली कवि निराला हैं। छायावाद युग में इनका नाम इस क्षेत्र में सबसे आगे है। दूसरे कवि हैं पंत जी। किन्तु निराला मुक्त छन्द को वर्णिक छन्दों के अनुरूप ढाल रहे थे और पंत मात्रिक रूप में। इस प्रकार मुक्त छन्द उक्त दोनों प्रकारं के छन्दों के आधार पर विकसित हुआ।

उदाहरणः–

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

–निराला

छन्द

पन्त मात्रिक छन्द के रूप में ढाल रहे हैं:–

उदाहरण:–

नोटस

ताक रहे हो गगन?
मृत्यु-नीतिलमा–गहन गगन?
अनिमेष, अचितवन, काल नयन?
निः स्पन्द शून्य निर्जन, निःस्वन?
देख भू की।
हरित मोहित
पुल्लवित मुमेरित
कुँजित गुँजित
कुसुमित
भू को

–पन्त

विस्तृत उत्तरीय प्रश्नः रस

प्र०1. रस किसे कहते हैं? रस के स्वरूप और उसके अवयवों का विवेचन कीजिए।

प्र०2. हिन्दी काव्य आचार्यों द्वारा बताये गये सभी रसों का सामान्य परिचय उनकी परिभाषा बताते हुए उनके विभिन्न अवयवों का उल्लेख उनके उदाहरण सहित कीजिए।

रीति

प्र०3. रीति सम्प्रदाय का परिचय देते हुए उसका संक्षेप में उल्लेख कीजिए। रीति की विभिन्न परिभाषा दीजिए। आचार्य वामन द्वारा रीति को काव्य की आत्मा कहा गया है इस अभिप्राय को स्पष्ट कीजिए।

प्र०4. प्रमुख रीतियों का परिचय दीजिए तथा रीति और रस के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

वक्रोक्ति

प्र०5. वक्रोक्ति का स्वरूप बताते हुए इसकी व्याख्या कीजिए। वक्रोक्ति सिद्धान्त के सभी भेद बताइए।